ISSN 0972-1002

श्रमण
ŚRAMAṆA

A Quarterly Research Journal of Jainology

Vol. LXVI No. IV October-December 2015

बुद्धया विनाऽपि विबुधार्चित पादपीठ, स्तोतुं समुद्यत मतिर्विगतत्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दु बिम्ब- मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ।।3।।

भक्तामरस्तोत्र-3

Parshwanath Vidyapeeth, Varanasi
Established : 1937

श्रमण

ŚRAMAṆA

(Since 1949)

A Quarterly Research Journal of Jainology

Vol. LXVI No. IV October-December, 2015

Editor

Dr. Shriprakash Pandey

Associate Editors

Dr. Rahul Kumar Singh **Dr. Om Prakash Singh**

Parshwanath Vidyapeeth, Varanasi

(Established: 1937)

(Recognized by Banaras Hindu University as an External Research Centre)

ADVISORY BOARD

Dr. Shugan C. Jain
New Delhi
Prof. Cromwell Crawford
Univ. of Hawaii
Prof. Anne Vallely
Univ. of Ottawa, Canada
Prof. Peter Flugel
SOAS, London
Prof. Christopher Key Chapple
Univ. of Loyola, USA

Prof. Ramjee Singh
Bheekhampur, Bhagalpur
Prof. Sagarmal Jain
Prachya Vidyapeeth, Shajapur
Prof. K.C. Sogani
Chittaranjan Marg, Jaipur
Prof. D.N. Bhargava
Bani Park, Jaipur
Prof. Prakash C. Jain
JNU, Delhi

EDITORIAL BOARD

Prof. M.N.P. Tiwari
B.H.U., Varanasi
Prof. K. K. Jain
B.H.U., Varanasi
Dr. A.P. Singh, Ballia

Prof. Gary L. Francione
New York, USA
Prof. Viney Jain, Gurgaon
Dr. S. N. Pandey
PV, Varanasi

ISSN: 0972-1002

SUBSCRIPTION

Annual Membership	*Life Membership*
For Institutions : Rs. 500.00, $ 50	For Institutions : Rs. 5000.00, $ 250
For Individuals : Rs. 150.00, $ 30	For Individuals : Rs. 2000.00, $ 150

Per Issue Price : Rs. 50.00, $ 10

Membership fee & articles can be sent in favour of
Parshwanath Vidyapeeth, I.T.I. Road, Karaundi, Varanasi-5

PUBLISHED BY

Shri Indrabhooti Barar, for Parshwanath Vidyapeeth, I. T. I. Road, Karaundi, Varanasi 221005, Ph. 0542-2575890

Email: pvpvaranasi@gmail.com

Theme of the Cover:

Bhaktāmara-stotra, verse-3 based picture, Yantra & Mantra
With curtesy : Sacitra Bhaktāmara-stotra by Shri Sushil Suri

NOTE: The facts and views expressed in the Journal are those of authors only. (पत्रिका में प्रकाशित तथ्य और विचार लेखक के अपने हैं।)

Printed by- Mahaveer Press, Bhelupur, Varanasi

सम्पादकीय

आज कल असहिष्णुता को लेकर देश में काफी बहस चल रही है। ऐसा लगता है कि भारत इसके पहले कभी इतना असहिष्णु नहीं रहा जितना आज हो गया है। तभी तो अनेक साहित्यकार, फिल्मकार, शिक्षाविद्, वैज्ञानिक अपनी योग्यता से हासिल किये गये अपने पुरस्कार वापस लौटा रहे हैं। यह अलग बात है कि उनमें से अब कुछ लौटाया पुरस्कार वापस ले रहे हैं। असहिष्णुता की जब भी बात उठती है तो उसका सम्बन्ध कहीं न कहीं धर्म से अवश्य होता है। आज भी जो बहस चल रही है वह धर्म के इर्द-गिर्द ही है। असहिष्णुता है क्या? वस्तुतः असहिष्णुता का अर्थ है- किसी धर्म, जाति, पन्थ आदि के विचारों को किसी के ऊपर थोपे जाने को सहन न किया जाना। किन्तु आज भारत में असहिष्णुता किसी विशेष वर्ग और उसके धर्म से जोड़कर देखी जा रही है। दादरी और पश्चिम बंगाल के मालदा के कालियाचक की कतिपय घटनायें इसका ताजा उदाहरण हैं।

इसका कारण है कि वर्तमान सन्दर्भ में असहिष्णुता का सम्बन्ध धर्म से कम राजनीति से अधिक हो गया है। स्वार्थी व्यक्ति और संगठन अपने निहित स्वार्थ हेतु भारत को असहिष्णु राष्ट्र का दर्जा देकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत की छवि खराब कर रहे हैं।

असहिष्णुता का समाधान है धार्मिक सहिष्णुता जो जैन धर्म-दर्शन की जीवन रेखा है। आज का मनुष्य प्रत्येक समस्या पर तार्किक दृष्टि से विचार करता है किन्तु दुर्भाग्य यह है कि इस बौद्धिकता के बावजूद भी एक ओर अंधविश्वास और रूढ़िवादिता कायम है तो दूसरी ओर वैचारिक संघर्ष अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया है। आज प्रत्येक धर्म सम्प्रदाय, प्रत्येक राजनैतिक दल और प्रत्येक वर्ग अपने हितों की सुरक्षा के लिये दूसरे के अस्तित्व को समाप्त करने पर तुला हुआ है। असहिष्णुता और वर्ग विद्वेष फिर चाहे वह धर्म के नाम पर हो, राजनीति के नाम पर हो, सेक्यूलरिज्म के नाम पर हो अथवा राष्ट्रीयता के नाम पर ही क्यों न हो, हमें विनाश के गर्त की तरफ ही लिये जा रहे हैं।

धर्म का अवतरण मनुष्य को सुख और शान्ति प्रदान करने के लिये हुआ है किन्तु हमारी मतान्धता और उन्मादी वृत्ति के कारण धर्म के नाम पर मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद की दीवारें खड़ी की जा रही हैं। धर्म भावना प्रधान होता है और भावनाओं को उभारना सहज होता है। इसीलिये मतान्ध, उन्मादी और स्वार्थी तत्त्वों ने धर्म को सदैव अपने हितों की पूर्ति का साधन बनाया है और आज भी बना रहे हैं।

हम भूल जाते हैं कि धार्मिक होने की पहली शर्त है- मानव होना। मानवता का अर्थ है- मनुष्य में विवेक विकसित हो, वह अपनी भावनाओं और हितों पर संयम रख सके तथा अपने साथी प्राणियों के साथ परस्पर सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझ सके- परस्परोपग्रहोजीवानाम्। धर्म हमारे जीवन को संस्कारित करने के लिये आवश्यक है किन्तु धर्म की प्रज्ञा से, विवेक से समीक्षा की जानी चाहिये। जैन दर्शन कहता है- 'पण्णा समिक्खये धम्मं' ।। आज धार्मिक उदारता और सहिष्णुता के लिये श्रद्धा को विवेक से समन्वित किया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

जैन दर्शन में धार्मिक सहिष्णुता का आधार उसका अनेकान्तवाद का सिद्धान्त है जो वस्तु को अनन्तधर्मात्मक मानते हुये इस बात पर बल देता है कि वस्तुतत्त्व के सन्दर्भ में हमारा ज्ञान और कथन दोनों सापेक्ष होता है। एक समय में वस्तुतत्त्व को सम्पूर्ण रूप से न जान पाने के कारण हमारा ज्ञान आंशिक होता है और आंशिक दृष्टिकोणों पर आधारित सापेक्ष ज्ञान को, अपने से विरोधी मन्तव्यों को असत्य कहकर नकारने का कोई अधिकार नहीं है। यह कहना कि मेरी दृष्टि ही सही है, सत्य केवल मेरे ही पास है, सरासर गलत है। जैन आगम सूत्रकृतांग स्पष्टतः कहता है कि जो केवल अपने मत की प्रशंसा करते हैं और दूसरों के मतों की निन्दा करते हैं, अथवा उनके प्रति विद्वेष भाव रखते हैं, वे सदैव संसार-चक्र में परिभ्रमित होते रहते हैं। जैन दर्शन के अनुसार जब सापेक्ष सत्य को निरपेक्ष रूप से दूसरे सत्यों का निषेधक मान लिया जाता है तो वह असत्य बन जाता है। जो सापेक्ष है वह अपनी सत्यता का दावा करते हुये भी दूसरे की सत्यता का निषेधक नहीं हो सकता। सत्य के सन्दर्भ में यही एक ऐसा दृष्टिकोण है जो विभिन्न धर्म और सम्प्रदायों की सापेक्ष सत्यता और मूल्यवत्ता को स्वीकार कर उनमें परस्पर सौहार्द और समन्वय स्थापित कर सकता है।

जैन परम्परा का नवकार मन्त्र अपने आप में धार्मिक सहिष्णुता का अनुपम उदाहरण है जिसमें सभी अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय के साथ -साथ सभी साधुओं को नमस्कार किया गया है चाहे वे किसी धर्म, सम्प्रदाय, जाति या वर्ग के हों। जैन आचार्य हेमचन्द्र ने जैन परम्परा में रहते हुये न केवल 'महादेवस्तोत्र' की रचना की बल्कि स्वयं शिव मन्दिर में जाकर शिव की वन्दना करते हुये कहा कि जिसने संसार भ्रमण के कारणभूत राग-द्वेष आदि तत्त्वों को क्षीण कर लिया है, वह चाहे ब्रह्मा हो, विष्णु हो, शिव हो या जिन, मैं उसे प्रणाम करता हूं। अतः जैन धर्म-दर्शन में असहिष्णुता को कोई स्थान नहीं है। जैन धर्म-दर्शन के सिद्धान्तों को आत्मसात किया जाय तो वे मानव में धार्मिक सहिष्णुता, शान्ति, समभाव और समन्वय का विकास करने में अति कारगर सिद्ध होंगे।

Contents

१.	**जमीकंद की ग्राह्यता-अग्राह्यता का प्रश्न** आगमज्ञानरत्नाकर श्री जयमुनिजी	१-१०
२.	**पुरातनप्रबन्धसंग्रह की ऐतिहासिक मूल्यवत्ता** डॉ०अरुण प्रताप सिंह	११-१६
3.	**जैन परम्परा के परिप्रेक्ष्य में विवाह पद्धति एवं वर्ण व्यवस्था** प्रो०कमलेश कुमार जैन	१७-२४
४.	**इण्टरनेट पर जैन साहित्य एवं शोध सामग्री** डॉ०विवेकानन्द जैन	२५-३०
५.	**JAINA INSCRIPTIONS RELATED TO THE RATTA CHIEFTAINS** Pinal Jain	31-35
	पार्श्वनाथ विद्यापीठ समाचार	३६-४६
	जैन जगत्	४६
	साभार प्राप्ति	४७-४८
	श्रीमद्धनेश्वरसूरिविरचितं सुरसुंदरीचरिअं (नवम परिच्छेद)	

Our Contributors

1. **Āgama-jñāna-ratnākara Shri Jaymuniji**
   Desciple of Sthānakavāsī Jaina Saṅgha Śāstā
   Pujya Shri Sudarshanlalji Maharaj, S. S. Jaina Sabha,
   Gannaur, (Sonipat)

2. **Dr. Arun Pratap Singh**
   Associate Professor, Shri Bajarang P.G. College,
   Sikandarpur, Ballia

3. **Prof. Kamalesh Kumar Jain**
   Former Head, Department of Jaina and Bauddha Darshan,
   S.V.D.V., BHU., Varanasi

4. **Dr. Vivekanand Jain**
   Assistant Librarian, Central Library, BHU.

5. **Pinal Jain**
   Research Scholar, Dept. of History, University of Delhi.

जमीकंद की ग्राह्यता-अग्राह्यता का प्रश्न

आगमज्ञानरत्नाकर श्री जयमुनिजी

अग्राह्यता की समीक्षा

जैन समाज में त्याग का विशेष महत्त्व रहा है। वस्तु का त्याग, कषाय का त्याग, शरीर का त्याग, हिंसादि १८ पापों का त्याग-ये सब त्याग आत्म-शुद्धि के हेतु हैं। वस्तु विशेष के त्याग के पीछे जहाँ आसक्ति घटाने की भावना रहती है वहीं त्यज्यमान वस्तु से सम्बन्धित हिंसा को घटाने की भावना भी रहती है। सचित्त वनस्पति के त्याग की परम्परा जैन-समाज के श्रावकों में काफी प्राचीन और आदरणीय रही है। जैनमुनि किसी एकेन्द्रिय सचित्त वस्तु को लेना तो दूर, छूते भी नहीं हैं। श्रावक भी भावना रखते हैं कि हम भी सचित्त वनस्पति का सेवन न करें या कम से कम करें। साधु-समाज में समय-समय पर इस विषय में विवाद रहा है कि कौन सा फल कब तक सचित्त रहता है और वह कब अचित्त बनता है। केला, सेब, बादाम, अंगूर आदि खूब चर्चित रहे हैं और अब भी हैं। नमक-मिर्च डालने से अचित्त मानना, आग पर रखने के बाद, अच्छी तरह पक जाने के बाद, टेढ़ा चीरने पर, गर्म पानी में से निकालने पर सचित्त होना और न होना आदि विषय अपने-अपने ढंग से निर्णीत हुए हैं परन्तु अखिल भारतीय स्तर पर इनका समाधान नहीं हुआ।

इस कड़ी में एक अहम मुद्दा जमीकंद का भी उभरा है। उसको भक्ष्य अथवा अभक्ष्य मानने की कई धारणाएं जैन-समाज में प्रचलित हैं- जो जमीकंद का त्याग करते हैं या करवाते हैं वे जमीकंद में अनन्त जीवों की हिंसा से बचने की भावना से युक्त होते हैं। उनकी यह भावना होती है कि हम सर्व वनस्पति को खाने से नहीं बच सकते तो अनन्त-काय से तो बच ही जाएं ताकि हमें अधिक पाप का भागी न बनना पड़े। जैनों के सभी सम्प्रदायों में आलू, मूली, प्याज आदि के त्याग की धारणा है। गुजरात में तो आलू-भक्षण को अण्डा-भक्षण तक से उपमित कर दिया जाता है पर क्या वह अतिवादी चिंतन सचमुच ही आगमिक, अहिंसा-वर्धक और जैनत्व का मूल अंग है? चिंतन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि संख्याओं के गणित ने सब कुछ उल्टा-पुल्टा कर दिया है। न अहिंसा की मूल भावना को स्पर्श किया, न आगमों की प्रामाणिकता रखी और न ही प्रायोगिक धरातल पर जी पाये। इनको प्राचीन और अर्वाचीन दो कुतर्कों से समझते चलें।

प्राचीन युग में हस्ति तापसों का एक दल होता था जिनका तर्क था कि हम एक हाथी को मारकर कई महीनों तक खाते हैं जबकि शाकाहारी मनुष्य एक दिन में

वनस्पति के असंख्य-अनन्त जीवों का वध कर देते हैं। आज-कल भी कुछ मांसाहारी यही तर्क देते हैं कि जीव तो फलों में भी होता है, फिर शाकाहारी हमसे किस तरह अधिक अहिंसक और करुणाशील हो सकते हैं। श्वेताम्बरों द्वारा मान्य किसी भी आगम में साधु या श्रावक के लिए ऐसा उल्लेख नहीं है कि वह साधारण वनस्पति का अचित्त रूप में भी सेवन न करे। जहां भी निषेध है वहां सचित्त का है और उसमें प्रत्येक और साधारण दोनों प्रकार की वनस्पतियां परिगणित की गई हैं। दशवैकालिक सूत्र का पाठ है- 'कंदं मूलं पलम्बं वा आमं छिन्नं च सन्निरं। तुंबागं सिंगबेरं च आगमं परिवज्जए।'[१] अहिंसा-व्रती साधु कंद, मूल, केला, घीया, अदरक सचित्त हो तो ग्रहण न करें। भगवती में जमाली के माता-पिता मुनिचर्या की कठिनता के प्रसंग में कहते हैं कि साधु कन्द, मूल, बीज, हरित-फल का आहार नहीं लेते।

आइये जरा, साधारण वनस्पति और प्रत्येक वनस्पति की संवेदना के विषय को लें, क्योंकि संवेदनशीलता ही जैन धर्मानुसार अहिंसा और हिंसा का मूल आधार मानी गई है। यदि एक पानी के पात्र में मक्खी या कीड़ी पड़ी है तो धार्मिक, दयावान व्यक्ति असंख्य जीवों की तुलना में एक मक्खी या कीड़ी बचाना चाहेगा क्योंकि एकेन्द्रिय से द्वीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय से त्रीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय से पंचेन्द्रिय जीव की शारीरिक विकास शक्ति, चेतना, सामर्थ्य एवं संवेदना अधिक से अधिकतर होती है। उसी तरह साधारण वनस्पति की अपेक्षा प्रत्येक वनस्पति के जीवों की चेतना एवं संवेदना बहुत अधिक होती है। साधारण वनस्पति के अनन्त जीवों के पुण्य से प्रत्येक वनस्पति के एक जीव का पुण्य ही अनन्तगुणा होता है। देवगति के जीव काल करके साधारण वनस्पति में पैदा नहीं हो सकते। वे प्रत्येक में ही पैदा होते हैं। अपर्याप्त अवस्था में तेजोलेश्या की संभावना प्रत्येक में है, साधारण में नहीं। कर्मग्रन्थों के अनुसार वनस्पति में जो दूसरा गुणस्थान माना गया है वह भी प्रत्येक को ध्यान में रखकर न कि साधारण वनस्पति को। आगम और कर्मग्रंथों का विश्लेषणपरक अध्ययन करने वालों का निष्कर्ष है कि साधारण और प्रत्येक वनस्पति में मात्रात्मक ही नहीं गुणात्मक अन्तर भी है, क्योंकि साधारण नामकर्म को पाप-प्रकृतियों में तथा प्रत्येक नामकर्म को पुण्य-प्रकृतियों में परिगणित किया गया है। त्रस जीवों की तुलना में स्थावर जीव, बादर की अपेक्षा सूक्ष्म जीव, पर्याप्त जीवों के समक्ष अपर्याप्त जीव जिस तरह मौलिक रूप से भिन्न हैं उसी प्रकार प्रत्येक की तुलना में साधारण जीव भी मौलिक रूप से भिन्न हैं। उनमें पुण्य का अल्प-बहुत्व न मानकर पुण्य-पाप का अन्तर माना गया है।

वैज्ञानिकों ने वनस्पति में जीवन माना है और उनके प्रमाण अधिकांश जैन उद्धृत करते हैं। उन्होंने भी सारे प्रयोग प्रत्येक वनस्पति पर किए हैं। साधारण वनस्पति की संवेदना

उनके यंत्रों में झलक नहीं सकती क्योंकि वहां पर चेतना का इतना अल्प विकास होता है कि उन्हें निर्जीव तो नहीं पर निर्जीवप्राय ही कहा जा सकता है।

एक हरा पत्ता पर्यावरण के लिए जितना उपयोगी है उतने जमीकंद के सैकड़ों फल आदि भी नहीं। एक व्यक्ति यदि अपने भोजन के लिए प्रत्येक वनस्पति के दो-चार पत्तों को खाता है तो उसने पर्यावरण को ज्यादा हानि पहुंचाई है जबकि जमीकंद आदि के प्रयोग से पर्यावरण को विशेष क्षति नहीं पहुंचती क्योंकि आक्सीजन विसर्जन हरे पौधे और पत्तों से होता है। पौधों से जो आक्सीजन पर्यावरण को मिलती है उससे लाखों अन्य प्राणी जीवित रहते हैं। प्रत्येक वनस्पति के उपजीव्य जीव ज्यादा हैं और साधारण के बहुत कम इसीलिए प्रत्येक वनस्पति की हिंसा में अन्य त्रस जीवों की अधिक हिंसा छिपी रहती है। अनन्त कायिक (साधारण वनस्पति) के अधिक प्रचलित खाद्य पदार्थ आलू के उत्पादन में पानी का अन्य सभी खाद्यान्नों, फलों की तुलना में अल्पतम खर्चा होता है, अर्थात् इसके उपयोग में पानी के जीवों की पारम्परिक (इनडाइरेक्ट) हिंसा सबसे कम है।

यह एक अन्य पहलू है कि मानव शरीर के लिए प्रत्येक वनस्पति में अधिक पोषक तत्त्व हैं, साधारण वनस्पति में कम। साधारण वनस्पति में सूर्य आदि के सम्पर्क का अभाव होने से फोटो सिंथेसिस आदि की प्रक्रिया नहीं होती। विटामिन-प्रोटीन आदि कम उत्पन्न होते हैं। इसीलिए डॉक्टर भी सामान्य जनता को प्रत्येक वनस्पति के फल अधिक बताते हैं और आलू आदि जमीकंद कम, पर अर्थशास्त्र की दृष्टि से भी जमीकंद वाली सब्जियां अधिक सस्ती होती हैं और प्रत्येक वनस्पति वाली महंगी।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर प्रत्येक वनस्पति साधारण से ज्यादा उपयोगी और अनन्त पुण्याधिक सिद्ध होती है लेकिन फिर भी यहाँ मुख्य प्रसंग अहिंसा की न्यूनाधिकता का है न कि शारीरिक लाभ-हानि या मूल्यों की कमी-बेशी का।

यह तथ्य विचारणीय है कि भगवान महावीर स्वामी ने श्रावक के लिए १५ कर्मादानों का निषेध किया है जिनमें वन-कर्म एक मुख्य कर्मादान है। विश्व के सभी जंगल काट दिए जाएं, सारा अन्न खा लिया जाए, सम्पूर्ण पहाड़ और भूमियां खोद दी जाएं तो भी आलू के सूई जितने भाग के खाने से जितने जीव मरेंगे उतने पूर्वोक्त क्रियाओं में नहीं मरेंगे। तो क्या कोई प्ररूपणा कर सकता है कि १५ कर्मादानों में इतना पाप नहीं है जितना जमीकंद खाने में? यदि वीतराग देवों को ऐसा सिद्धान्त अभीष्ट होता तो सर्वप्रथम यही नियम बनाते कि साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप धर्म को वही व्यक्ति स्वीकार करे जो जीवन-पर्यन्त जमीकंद का स्पर्श भी न करे।

आचारांग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध के प्रथम अध्ययन के आठवें उद्देशक[२] में अशस्त्र परिणत वस्तुओं की सूची दी गई है जो ग्रहण करने योग्य नहीं हैं। जिसमें शालूक, विरालिका, सर्षप नालिका, पिप्पली, मिर्च, अदरक, आम-प्रलम्ब, आम्रातक, ताल सुरभि आदि के प्रलम्ब तथा अश्वत्थ न्यग्रोध सल्लकी के प्रवाल, कुछ सरटू (कपित्थका, दाडिमका बिल्वका) तथा कुछ मंथू का वर्णन है, ये अप्रासुक सचित्त हों तो न लें, ये प्रासुक एषणीय हों तो ग्राह्य हैं। इनमें शालूक (कमलकंद) व अदरक का उल्लेख स्पष्टत: अनन्तकायिक प्रयोग निषेध का खण्डन करता है। उससे अगले पाठों में सिंघाड़े का, भिस का, भिस मृणाल का तदन्तर अग्रबीज और मूल-बीजों का मूल जातों का तथा लशुन-पत्र, लशुनकंद लशुन-चोयक का वर्णन है। ये सब पाठ अचित्त अनन्तकाय की ग्राह्यता की ओर संकेत करते हैं। सातवें अध्ययन के द्वितीय उद्देशक[३] में मुनि के लिए कहा है कि आम्र, इक्षु तथा लहशुन के अंश यदि सचित्त अप्रासुक हों तो न लें तथा अचित्त प्रासुक हों तो ले सकते हैं। पाठ निम्नांकित है "से भिक्खु वा से जं पुण जाणेज्जा..... ल्हसुन वा ल्हसुणकदं वा ल्हसुण चोयगं वा ल्हसुण णालगं वा तिरिच्छ छिण्णं वोच्छिण्णं फासुयं जाव पडिगाहेज्जा।"

किसी-किसी सम्प्रदाय में जमीकंद के त्यागी और अत्यागी दोनों तरह के साधु-साध्वी होते हैं। जो त्यागी हैं उनका त्याग संतोष और तप की दृष्टि से तो उच्चतर माना जा सकता है पर अहिंसा की दृष्टि से दोनों मुनियों के त्याग में कुछ अन्तर पड़ता हो, ऐसा नहीं लगता क्योंकि दोनों मुनि नवकोटि शुद्ध अचित्त आहार लाए हैं। ऐसा तो नहीं माना जा सकता कि साधारण वनस्पति का अचित्त भोजन करने वाला मुनि गृहस्थ कृत हिंसा का अधिक उत्तरदायी है, प्रत्येक वनस्पति का आहार करने वाला कम। रही बात अनन्त-कायिक पदार्थों के त्याग करने वाले साधु या श्रावकों की तो वह भी विचित्र-सी स्थिति है क्योंकि पूर्णत: अनन्त-कायिक वनस्पति का त्यागी कोई नहीं है। प्रत्येक वनस्पति में जहां-जहां अवान्तर शाखा का उद्गम होता है वहां-वहां स्थल अनन्त-कायिक होता है- उग्गममाणे अणंते- ऐसा आगम पाठ है। उदाहरण के तौर पर सरसों का साग लें- उसमें स्थल-स्थल पर नया अंकुरण है और वह स्थल अनन्त जीवों का उत्पत्ति स्थान है, भीगे हुए बादाम में, चने, गेहूं, मूंग की तरह अंकुरण होता है और भीगे हुए बादाम को पीसकर दूध आदि में प्राय: अनन्तकाय के त्यागी लेते हैं।

फिर जमीकंद के त्यागी हल्दी और अदरक का आगार रखते हैं। जब अनन्तानन्त जीवों को खा ही रहे हैं तो एक-दो पर जोर देना विसंगति का सूचक है। पाप है तो इन दो की भी छूट क्यों रखी जाए? कई स्थानों पर त्याग हास्यास्पद स्थिति में पहुंच जाता है- जैसे आलू के त्यागी आलू के चिप्स या पुरानी आलू की भंगोड़ी खाते हैं,

यह कहकर कि ये अब अनन्तकायिक नहीं रहे। कुछ दिनों के बाद गाजर की कांजी या अचार को भी ग्राह्यता की कोटि में रख दिया जाता है उनके तर्क पर एक प्रतितर्क यह है कि उबलने के बाद जो आलू-गाजर की सब्जी खाई जाती है क्या वह सचित्त रह गई जो उसे अनन्तकायिक कहा जा रहा है।

जहां तक श्रावकों द्वारा जमीकंद खाने के त्याग की बात है वह भी अहिंसा की दृष्टि से ज्यादा उच्च नहीं जंचती क्योंकि गृहस्थ आलू आदि खरीदता है, बेचता है, काटता है औरों को परोसता है, शीतगृहों में रखता है, उनकी खेती करता है, तो क्या खाने में दो-चार आलू का त्याग करके हिंसा रुक गई? ये तो वही बात हुई कि एक आदमी खुद अण्डा नहीं खाता पर पूरे पॉल्ट्री फार्म को चलाता है। होटल में उसका सेवन कराता है। क्या हम उसे बड़ा त्यागी कहें?

एक आगमिक संदर्भ इस विषय में उद्धृत किया जाता है जिससे अनन्तकाय की हिंसा अधिक प्रमाणित की जाती है। छेद सूत्रों में वर्णन है कि साधु के आहार में भूल से प्रत्येक वनस्पति आ जाए तो उसका दण्ड ज्यादा है। जमीकंद के त्याग के समर्थकों ने इस दण्ड को बहुत अधिक महत्त्व दिया है पर छेद सूत्रों में यह दण्ड व्यवस्था कोई संख्या पर आधारित नहीं है अपितु प्रमाद की अधिकता को लेकर की गई है। साधु अपनी भिक्षा लेते समय यदि यह भी गौर न करे कि ग्राह्यमाण वस्तु पर नीलन-फूलन लग गई है, फूई-फफूंद जम गई है और उस वस्तु को ले आए तो उसका दण्ड ज्यादा है जबकि शाक आदि में अपक्व वनस्पति का टुकड़ा आ जाए तो उसका दण्ड अल्प है। यह अर्थ हमें अर्थापत्ति से निकालना होगा। ऐसा ही अन्य प्रसंग है कि मुनिराज विहार यात्रा में हैं, एक ओर प्रत्येक वनस्पति है, दूसरी ओर अनन्त-कायिक हैं तो प्रत्येक पर पैर रखकर अनन्त-काय को बचाएं। इस प्रसंग में भी विचारणीय यह है कि एक ओर काई है और दूसरी ओर घास है। घास के जीवों के शरीर काई की तुलना में कुछ न कुछ अधिक सक्षम हैं, वे पैर के भार से कुछ मरें, कुछ बचें दोनों ही संभावनाएं हैं जबकि काई के जीवों का शरीर बहुत मुलायम, चिकना एवं भार सहने में असमर्थ है, वह शीघ्र मरेगा। अत: 'सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पंडित:'- सिद्धान्त यहां लागू होगा। किसी क्रिया का जो भी दण्ड छेदसूत्रों में लिखा है वह किसी भी क्रिया का विधान और निषेध नहीं कर सकता क्योंकि छेदसूत्रों में कई स्थलों पर अत्यल्प दोष पर कड़ा दण्ड है तो कहीं महान दोष पर अत्यल्प दण्ड लिखा है। निशीथ के १८वें उद्देशक में वर्णन है कि अनर्थ में (बिना जरूरत के) नौका की सवारी, नौका को पानी के अन्दर से बाहर लाने, नौका में से पानी निकालने आदि २०-२५ क्रियाओं पर लघु चौमासी दण्ड है[४] और राजा के पशु-

पालकों से आहार लेने में ''गुरू चौमासी'' दण्ड लिखा है।[५] निशीथ के ९वें उद्देशक में लिखा है कि राजा की सवारी देखने के लिए एक कदम भी बढ़ाए तो ''गुरू चौमासी''[६] और चित्रशालाएं, झरने, वन सौन्दर्य, गाँव के मेले, ग्रामवध, ग्रामदाह, अश्व आदि के युद्ध, नाटक, नृत्य, महायुद्ध देखने के लिए कहीं जाए तो ''लघु चौमासी''[७] का दण्ड आता है, तो क्या एक में पाप ज़्यादा और इन सबमें पाप कम लगता है, जो दण्ड भिन्नता की गई है। छेद सूत्र में वर्णन आया है कि सुई को अविधि से लौटाए तो ''गुरू चौमासी'' का दण्ड है तो क्या हम कल्पना करलें कि दोष की गम्भीरता पहले में ज्यादा है और दूसरे में कम है? कृत्स्न (सम्पूर्ण) सचित्त आम की फाँक खाने का दण्ड ''लघु चौमासी'' है। ऐसे ही अन्य स्थान पर वर्णन है कि पनग आदि पर शौच जाने का दण्ड ''लघु मासी'' और सूने घर में शौच जाने पर ''लघु चौमासी'' का दण्ड आता है। ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं जो आचार्यों ने दण्ड के विषय में दिए हैं पर वे किसी भी घटना के लिए शत- प्रतिशत दोष की गंभीरता की न्यूनाधिकता का प्रमाण नहीं बन सकते और फिर निशीथ सूत्र में ही पिप्पली, अदरक को पिछले दिन का लेने का दण्ड निषेध किया है, तत्कालीन का नहीं।

निशीथ सूत्र[८] के ही ११वें उद्देशक में वर्णन है कि आधे योजन से दूर से पात्र लाएं तो ''गुरू चौमासी'' का दण्ड और १२वें उद्देशक[९] में कहा है कि आधे योजन से दूर से आहार लावें तो ''लघु चौमासी'' का दण्ड। इससे क्या सिद्ध होता है? निशीथ के ही १४वें उद्देशक[१०] में स्पष्ट पाठ है कि पात्र से पृथ्वीकाय, जलकाय, कंदमूल, पत्र, पुष्पादि निकाल कर लें तो समान दण्ड है, कम-ज्यादा नहीं। क्या इस प्रक्रिया में कंदमूल की ज्यादा विराधना नहीं होती? इसी में १२वें उद्देशक[११] में पाँच स्थावर-कायों की विराधना का एक ही दण्ड लिखा है। वहाँ वनस्पति का विभाजन नहीं लिखा कि साधारण की विराधना में ज्यादा और प्रत्येक की विराधना में कम दण्ड। ऐसे ही निशीथ सूत्र में वर्णन है कि सचित्त स्थान पर जहाँ अण्डे, बीज, हरियाली, काई है वहाँ शौच जाएं तो ''लघु मासी'' और वस्त्र-पात्र सुखा दें तो ''लघु चौमासी'' का दण्ड। तो क्या प्रथम क्रिया में दूसरी क्रिया से कम हिंसा है? कहने का अभिप्राय यह है कि छेद सूत्र इस बात के निर्णायक नहीं हो सकते कि साधारण वनस्पति की हिंसा प्रत्येक से ज्यादा है, केवल एक ही जगह पर 'अनन्तकाय संजुत्त' के पाठ को हम निर्णायक नहीं मान सकते जबकि इसके विरोधी पाठ कंदम-कदम पर मिल रहे हैं; इसीलिए इस पाठ को हम 'विचित्रा सूत्राणां गतिः' कहकर ही समझें तो बेहतर है। कुछ विद्वानों का मन्तव्य है कि आगमों में साधारण और प्रत्येक वनस्पति जीवों की वेदना में अन्तर नहीं बताया गया अपितु वनस्पति मात्र की वेदना को एक ही श्रेणी में रखा है परन्तु दोनों को एक ही शीर्षक के अन्तर्गत लाने से वे पूर्णतः समान चेतना

के अधिकारी नहीं बन जाते जबकि अन्य स्थलों से उनकी चैतन्य शक्ति स्पष्टत: भिन्न प्रमाणित होती है। आगमों में तो कई स्थल ऐसे भी हैं जहाँ एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय तथा अन्य विकसित जीवों की वेदना भी एक सरीखी बताई गई है, उदाहरण के तौर पर प्रज्ञापना[१२] के ३५वें पद में वर्णन है कि सभी एकेन्द्रियों की, विकलेन्द्रियों की तथा असंज्ञी तिर्यंच मनुष्यों की, यहाँ तक कि मिथ्यात्वी देवताओं की भी वेदना "अनिदा वेदना" होती है तो क्या इन सबकी अनिदा वेदना को समान ही माना जाएगा, कदापि नहीं। एकेन्द्रियों से विकलेन्द्रियों की वेदना तथा उससे असंज्ञी, तिर्यंच पंचेन्द्रिय की वेदना अधिक होती है किन्तु यहाँ सबके लिए एक शब्द लिखा है। इसी न्याय से सूक्ष्म से बादर की तथा साधारण से प्रत्येक की वेदना भी अधिक माननी चाहिए। इसी तरह भगवती[१३] के अनुसार सभी एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, असंज्ञी जीव 'अकाय निकरण' वेदना वेदते हैं पर उनमें अल्प-बहुत्व का वर्णन नहीं है, पर यह वर्णन न होने से यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि सबकी समान ही वेदना होती है। यदि एकेन्द्रिय से विकलेन्द्रिय की वेदना ज्यादा है तो इसी प्रमाण से साधारण से प्रत्येक की वेदना भी ज्यादा है। प्रज्ञापना के ८वें पद में संज्ञाओं का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि - चौबीस दण्डकों में चारों संज्ञाएं होती हैं पर तिर्यंचों में आहार संज्ञा कुछ अधिक होती है। अब प्रश्न यह है कि क्या एकेन्द्रियों से विकलेन्द्रियों की और विकलेन्द्रियों से पंचेन्द्रिय जीवों में समान ही आहार संज्ञा होती है, उत्तर यही होगा कि इनमें काफी अन्तर होता है। जिसमें जितना उपयोग, शारीरिक सामर्थ्य कम होती है, उसकी संज्ञा कम, जिसका जितना उपयोग, शरीर-सामर्थ्य अधिक होती है, उसकी आहार संज्ञा भी अधिक होती है। साधारण और प्रत्येक के सम्बन्ध में भी यही जानना चाहिए।

जैन चिन्तकों में यह भी धारणा है कि एकेन्द्रिय जीवों को (प्रत्येक-साधारण सहित सभी को) मनुष्य जैसे विकसित और संवेदनशील प्राणी के बराबर ही पीड़ा का अनुभव होता है और इसके लिए वे आचारांग तथा भगवतीसूत्र के कुछ पाठों का उदाहरण देते हैं, इस विषय की समुचित समीक्षा भी जरूरी है।

आचारांग के प्रथम श्रुतस्कंध के प्रथम अध्ययन में पाठ का अर्थ जैसा प्रचलित है वैसा अर्थ मूल पाठ से कथमपि ध्वनित नहीं होता। प्रस्तुत पाठ में लिखा है- अप्पेगे अंधमब्भे अप्पेगे अंधमच्छे, फिर पाद, गुल्फ, जंघा, जानु, उरु, कटि, नाभि, पार्श्व, उदर, पीठ, छाती का वर्णन करते-करते मस्तक सिर के छेदन-भेदन का वर्णन है, यहाँ कहीं नहीं लिखा है कि पृथ्वीकाय आदि की वेदना अंधे-बहरे-गूंगे के समान होती है। यहाँ तो सर्वप्रथम 'अंध' शब्द के द्वारा पैरों के अधोभाग पर छेदन-भेदन लिखा

है। फिर शेष मानव के एक-एक अंग का छेदन-भेदन। इस आगम पाठ के दो अर्थ संभावित हैं-

१. हिंसक जीव अन्य प्राणियों के पैर के अधोवती भाग से लेकर शीर्ष तक के सभी भागों का छेदन-भेदन करता रहता है।

२. पूर्व में किए गए हिंसा-पूर्ण कार्यों का फल जीवों को उत्तरकाल में यह मिलता है कि उसके पैर के अधोभाग से शीर्ष पर्यन्त अंगों का छेदन-भेदन इसे सहना पड़ता है।

यहाँ 'अंध' शब्द को समझ लें, यह संस्कृत शब्द 'अधस्' (निचला भाग) का प्राकृत रूप है। जैसे-वक्र को वंक, दर्शन को दंसण, त्र्यस्र को तंस, पृथक् को पिंघ, पुंघ यानि अनुस्वार आगम कर दिया है। ऐसे ही 'अधस्' शब्द में अनुस्वार आगम करके 'अंध' शब्द बनता है। सम्पूर्ण पाठ ही इस तथ्य को प्रमाणित कर रहा है। यदि प्रचलित अर्थ के अनुसार स्थावरों की पीड़ा-अंधे-गूंगों की तरह मान लें तो फिर श्रावकों को पंचेंन्द्रिय जीवों को मारने का पाप लगेगा। जब आगमों की हर व्याख्या साधारण जीवों को प्रत्येक की तुलना में बहुत निम्न स्तर का सिद्ध कर रही है तो क्या यह सब आगम-पाठों का दुरुपयोग नहीं है जो दोनों की चेतना को बराबर प्रमाणित किया जा रहा है।

एक प्रश्न मन में कौंध सकता है कि जैन-परम्परा में अनन्तकाय के भक्षण के निषेध का इतिहास तो पुराना है पर यह क्यों शुरू हुआ? इसका समाधान यह है कि सनातन धर्म के ऋषि प्राय: कन्दमूल का भक्षण करते थे, उनके विरोध में गोशालक ने इनका सेवन वर्जित किया। जमीन खोदना, बैलों को नाथ डालना, हल चलाना, यहाँ तक कि जमीन से निकलने वाले कंद-मूल तक को भी अभक्ष्य घोषित कर दिया और उसके इस प्रचार का जैन धर्मावलम्बियों पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि यह सोचा जाने लगा कि जब गोशालक के अनुयायी भी जमीकंद नहीं खाते तो फिर हमें तो और भी त्याग रखना चाहिए। फिर क्रमश: यह भोजन परम्परा जैनत्व का अभिन्न अंग बन गई। हमारे धर्म का मौलिक-रूप न होते हुए भी मौलिक से ज्यादा मान्यता मिल गई। यह एक प्रतिक्रिया जन्य (Reactionary) अपनाया हुआ रिवाज है न कि आगमिक विधि निषेध का स्पष्ट परिणाम। वस्तुत: हिंसा और अहिंसा को नापने के लिए संख्या बहुत ही कमजोर तथा अप्रामाणिक मापदण्ड है; अहिंसा के स्वरूप निर्धारण में तीन करण, तीन योग, क्रूरता, दयालुता, म्रियमाण जीव की इन्द्रिय शक्ति, पर्याप्ति, प्राण, संकल्प पूर्वकता, आरम्भ-मात्र जन्यता, सापराधकता-निरपराधकता, परिमाण में हिंसा की वृद्धि और कमी, सैकड़ों पहलू ऐसे होते हैं जो

निर्धारण करते हैं कि यह हिंसा अनुचित है या उचित, ज्यादा है या कम, अप्रासंगिक है या प्रासंगिक।

पहले गुजरात में स्थित जैन संप्रदायों के अलावा भारत की कोई भी जैन परम्परा ऐसी नहीं थी जो जमीकंद का प्रयोग नहीं करती थी या जिसके प्रत्येक साधु-साध्वी सम्पूर्ण रूप से जमीकंद के त्यागी हों तथा आज भी ऐसा कोई सम्प्रदाय नहीं है। हाँ आजकल एक-दूसरे के प्रभाव में आकर कैसी भी प्ररूपणा कर दें पर वास्तविकता से सभी सम्प्रदाय परिचित हैं। अन्त में छोटी-सी उपमा प्रस्तुत है-

एक व्यक्ति ने जरा-सी चिंगारी जलाई, दूसरे ने विशाल अग्निपुंज बुझाया, जीवों की संख्या की दृष्टि से पहले ने कम जीव अपने हाथ से मारे व दूसरे ने ज्यादा मारे, पर आगम ने पहले को अधिक आरम्भी माना तथा दूसरे को अल्पारम्भी माना। कारण स्पष्ट है कि पहली क्रिया से विध्वंस बढ़ता है, दूसरी से रुकता है। इस तरह प्रत्येक वनस्पति के अधिक प्रयोग से प्रकृति और पर्यावरण की जीवन शृंखला ज्यादा टूटती है जबकि साधारण से कम।

पुनः एक बात सूचित करना आवश्यक है कि लेखक का लक्ष्य किसी जमीकंद के खाने वाले का समर्थन करना नहीं है, न ही उनसे बने व्यजनों का स्वाद ही उसे लुभाता है। जमीकंद के प्रयोग करने वाले ऐसे-ऐसे मुनिराज हैं जो मिठाई, नमकीन, मेवा, मुरब्बा, खीर, हलवा, घी आदि विविध स्वादु पदार्थों के परिपूर्ण त्यागी होते हैं। वस्तु का त्याग या अत्याग महत्त्वपूर्ण नहीं है, महत्त्व केवल इस बात का है कि किसी एक मुद्दे को भावुक बनाकर सामान्य-जन को गुमराह न किया जाए, न ही उसकी निगाह में संत-सतियों को शिथिलाचारी आदि की संज्ञा दी जाए। किसी भी वस्तु का त्याग हमें आनन्द देता है पर यह हीनता और उच्चता की ग्रंथि का निर्माण न कर जाए।

जमीकंद के त्याग को हम संतोष व तपस्या की दृष्टि से बड़ा मान सकते हैं पर अहिंसा की दृष्टि से उतना महत्त्वपूर्ण नहीं लगता।

संदर्भ :

१. दशवैकालिक सूत्र, आगम प्रकाशन समिति, व्यावर, राजस्थान, पंचम अध्ययन, सूत्र १३८, पृ० १९१

२. आचारांग सूत्र, आगम प्रकाशन समिति, व्यावर, राजस्थान, द्वितीय श्रुत-स्कन्ध, प्रथम अध्ययन, उद्देशक ८, सूत्र ३७५-८८, पृ० ८२-८५

३. वही, अध्ययन ७, उद्देशक २, सूत्र ६३१-३२, पृ० २८९-९०

४. निशीथ सूत्र, आगम प्रकाशन समिति, व्यावर, राजस्थान, उद्देशक १८, सूत्र १-३२, पृ० ३९२-९४

५. वही, उद्देशक ९, सूत्र १, ६, पृ० १८२-८३

६. वही, सूत्र ८-९, पृ० १८५

७. वही, उद्देशक १२, सूत्र १६-३१, पृ० २६७-२६९

८. वही, उद्देशक ११, सूत्र ५, पृ० २२२

९. वही, उद्देशक १२, सूत्र ३३, पृ० २७७

१०. वही, उद्देशक १४, सूत्र ३३-३६, पृ० ३२१-२२

११. वही, उद्देशक १२, सूत्र ८, पृ० २५६

१२. प्रज्ञापना सूत्र, आगम प्रकाशन समिति, व्यावर, राजस्थान, पद ३५, सूत्र २०७७-८४, पृ० २२२-२६

१३. व्याख्या प्रज्ञप्ति, आगम प्रकाशन समिति, व्यावर, राजस्थान, शतक ७, उद्देशक ७, सूत्र २४, पृ० १७१

१४. आचारांग सूत्र, पूर्वोक्त, प्रथम श्रुतस्कन्ध, प्रथम अध्ययन, उद्देशक २, सूत्र १५, पृ० ११-१२

*****

पुरातनप्रबन्धसंग्रह की ऐतिहासिक मूल्यवत्ता

डॉ० अरुण प्रताप सिंह

विशाल भारतीय साहित्य की संरचना में जैन धर्म का अप्रतिम योगदान है। वैदिक एवं बौद्ध परम्परा के समान जैन परम्परा के आचार्यों ने ईसापूर्व की शताब्दियों से लेकर आधुनिक काल तक निरन्तर अपनी लेखनी के द्वारा उसे समृद्ध किया है। साहित्य समाज का दर्पण होता है और जैनाचार्यों ने निस्सन्देह अंग-उपांग, प्रकीर्णकं, छेद, मूल, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, कथा एवं काव्य साहित्य द्वारा तत्कालीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का जीवन्त प्रदर्शन किया है। प्रबन्ध साहित्य कथा एवं काव्य के अन्तर्गत आते हैं और इन क्षेत्रों में भी जैनाचार्यों का योगदान प्रशंसनीय है। प्रबन्ध अर्ध ऐतिहासिक वृत्तान्त होते हैं जिनमें समसामयिक घटनाओं के साथ-साथ थोड़ी कल्पनाएँ भी निहित होती हैं। परम्परा में श्रद्धा भाव रखने के कारण लेखक उसमें अलौकिकताओं का समावेश कर देता है। लेखक का यह कृत्य कोई अक्षम्य अपराध नहीं है क्योंकि वह इतिहास को केवल तिथि एवं घटनाओं का शुष्क मिश्रण ही नहीं मानता अपितु वह उसे साहित्य के अन्तर्गत रखना चाहता है। हिन्दू पुराण भी, जो जैन प्रबन्धों के थोड़ा पहले लिखे गये थे, कुछ इसी प्रकार के हैं। प्रारम्भ में अधिकांश पाश्चात्य एवं कुछ भारतीय इतिहासकारों ने उन्हें त्याज्य समझकर छोड़ दिया था तथा कल्पनाओं में विचरण करने वाला साहित्य माना था। परन्तु निरन्तर शोध की प्रवृत्ति के कारण पुराणों की ऐतिहासिक मूल्यवत्ता का बोध हुआ और अब तो द्वितीय-तृतीय शताब्दी ईस्वी से लेकर छठी-सातवीं शताब्दी ईस्वी तक अनेक ऐतिहासिक घटनाओं की पुष्टि इन्हीं पौराणिक ग्रन्थों से होती है। प्रबन्ध साहित्य के साथ भी ठीक यही स्थिति दिखायी देती है। अपने ग्रन्थों 'प्रबन्धचिन्तामणि' एवं 'प्रबन्धकोश' में क्रमशः आचार्य मेरुतुंग एवं आचार्य राजशेखर ने प्रबन्धों को लेकर इतिहास की एक स्पष्ट व्याख्या की है। आचार्य मेरुतुंग ने इतिहास को पूर्व-परम्परा, स्रोत-ग्रन्थ तथा यथाश्रुति का मिला-जुला रूप बताया है। उन्होंने प्रबन्धचिन्तामणि को तिथियों एवं कालक्रम से गुम्फित कर दिया है। इससे सिद्ध होता है कि उन्हें इतिहास की सच्ची पकड़ थी। वह स्पष्ट कहते हैं कि उन्होंने वह वृत्तान्त जैसा घटा था वैसा ही निवेदित किया है।[१] यह इतिहास की वैज्ञानिक परिभाषा थी। इसी प्रकार आचार्य राजशेखर ने प्रबन्ध साहित्य को इतिहास लेखन की एक नई विधा के रूप में प्रस्तुत किया तथा कल्पनाओं एवं अलौकिकताओं को काफी हद तक कम किया। पहली बार राजशेखर ने चरित-ग्रन्थों एवं प्रबन्ध ग्रन्थों के अन्तर को परिभाषित किया। इनके अनुसार ऋषभ-वर्धमान तीर्थंकरों, चक्रवर्ती नरेशों एवं आर्यरक्षित के काल तक (प्रथम शताब्दी

ईस्वी) के आचार्यों के जीवन-घटनाओं को चरित-ग्रन्थों के अन्तर्गत रखा गया है तथा उनके बाद के महापुरुषों की जीवन-घटनाओं को प्रबन्ध-साहित्य के अन्तर्गत[२]। आचार्य राजशेखर के कहने का तात्पर्य यह था कि राजाओं, गुणीवान पुरुषों, आचार्यों, श्रावकों, तीर्थों तथा ऐतिहासिक घटनाओं को लेकर लिखे गये वृत्त-प्रबन्ध हैं। हालांकि राजशेखर के कथन की कोई प्राचीन आधारशिला नहीं दिखायी देती और न कोई लक्ष्मण रेखा है जहाँ चरितों एवं प्रबन्धों को सर्वथा अलग-अलग खानों में रखा जा सके। उदाहरणस्वरूप- आचार्य हेमचन्द्र का त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित तथा मेरुतुंग का प्रबन्धचिंतामणि क्रमशः सर्वाधिक प्रसिद्ध चरित एवं प्रबन्ध-ग्रन्थ हैं। दोनों को सर्वरूपेण अलग कर पाना अत्यधिक कठिन है। दोनों में अर्ध-ऐतिहासिक वृत्तान्त हैं तथा दोनों में कल्पनाओं/अलौकिकताओं की हल्की सी छौंक भी है।

चरितों एवं प्रबन्ध ग्रन्थों में एक अन्तर अवश्य द्रष्टव्य है। चरित-ग्रन्थों में नायक में गुण ही गुण दिखाए जाते हैं, वहीं प्रबन्ध ग्रन्थों में नायक के गुणों के साथ उसके अवगुणों एवं दुर्बलताओं का भी वर्णन होता है इसमें जीवन की वास्तविक घटनाएँ अपने मूलरूप में प्रदर्शित की जाती हैं। इस प्रकार प्रबन्ध-साहित्य हिन्दू पुराणों एवं जैन चरित ग्रन्थों की तुलना में ज्यादा ऐतिहासिक हैं। यही कारण है कि उनमें वर्णित सामाजिक-धार्मिक एवं आर्थिक घटनाओं को तत्कालीन समाज का दर्पण माना जाता है। आधुनिक भारत का गुजरात प्रान्त इस दृष्टिकोण से विशेष भाग्यशाली रहा कि जैन आचार्यों ने अपने सर्वाधिक प्रबन्ध इसी भूमि पर लिखे। गुजरात ने भारतीय इतिहास के इतने कड़वे सच चखें हैं कि यहाँ ऐतिहासिक संवेदना एवं चेतना स्वतः उत्पन्न सी हो गई। भारत के अन्य किसी प्रान्त को यह श्रेय नहीं जाता। जैन आचार्यों ने १३वीं शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर १६वीं शताब्दी के अन्त तक मालवा, गुजरात एवं राजस्थान के सम्बन्ध में प्राकृत-अपभ्रंश एवं संस्कृत में प्रबन्ध ग्रन्थों की रचनाएँ कीं। मेधावी आचार्यों ने अपने काल की घटनाओं को तो लिपिबद्ध किया ही, अपने काल के पूर्व की ऐतिहासिक घटनाओं एवं वंशावलियों को भी सशक्त रूप से सामने रखा। अपने पूर्व की घटनाओं को उन्होंने जनश्रुति से ग्रहण किया जिसकी अधिकांश बातें इतिहास सम्मत थीं। इस सशक्त विधा से भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन में अत्यधिक सहायता प्राप्त हुई। मालवा, गुजरात एवं राजस्थान के सटे हुए प्रदेश की ऐतिहासिक घटनाएँ पूरे उत्तर भारत से सम्बद्ध थीं, अतः यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि पूर्वमध्यकाल एवं मध्यकाल की ऐतिहासिक घटनाओं के लिए प्रबन्ध-ग्रन्थों का अध्ययन सर्वथा अपेक्षित है। दूसरे शब्दों में, हर्ष की मृत्यु (सातवीं शताब्दी का मध्य) से लेकर मुगलकाल के पतन (अठारहवीं शताब्दी का प्रारम्भ) तक की

ऐतिहासिक घटनाओं के ये प्रामाणिक स्रोत हैं। हमें विवेक एवं धैर्य से कुछ कल्पित वर्णनों को ऐतिहासिक घटनाओं से अलग करना है।

(ख)

यहाँ इन प्रबन्धों के रचयिताओं/लेखकों एवं उनके रचनाकाल का प्रश्न विचारणीय है। प्रबन्धों के मूल लेखकों को खोज पाना अत्यन्त दुर्लभ है। आज हमारे पास ऐसा कोई स्रोत नहीं है कि हम उनके मूल लेखकों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकें। उदाहरणार्थ - प्रबन्धचिन्तामणि एवं प्रबन्धकोश के लेखक के रूप में क्रमश: मेरुतुंग एवं राजशेखर प्रसिद्ध हैं परन्तु वास्तव में ये इनमें संग्रहीत सभी प्रबन्धों के मूल लेखक नहीं हो सकते। प्रबन्धचिन्तामणि में ११ प्रबन्ध हैं तथा प्रबन्धकोश में २४ (इसीलिए इसका एक नाम चतुर्विंशतिप्रबन्ध भी है) इस तथ्य के सबसे बड़े साक्ष्य वे प्रबन्ध हैं जो दोनों ग्रन्थों में समान रूप से प्रांप्त होते हैं। अपने ग्रन्थ को पूरा करने के लिए राजशेखर ने पूर्ववर्ती प्रबन्धों से आधे से ज्यादा सामग्री ली है। इनकी मौलिक रचना ३-४ प्रबन्धों तक ही सीमित है। इससे सिद्ध होता है कि इस प्रकार के प्रबन्धों के मूल लेखक इन लेखकों (मेरुतुंग एवं राजशेखर) से भिन्न रहे होंगे, परन्तु उनके नाम अज्ञात हैं। जहाँ तक 'पुरातनप्रबन्धसंग्रह' का प्रश्न है, इसकी भी ठीक यही स्थिति है। सन् १९३५ में प्रसिद्ध आचार्य जिनविजयजी को पाटन भण्डार से यह प्रति प्राप्त हुई थी। उन्होंने इसे एकत्र कर प्रकाशित किया और आज यह ग्रन्थ उन्हीं के नाम से जाना जाता है। इसी प्रकार मेरुतुंग एवं आचार्य राजशेखर ने अपने समय में वर्तमान पूर्वरचित प्रबन्धों को संग्रहीत किया- कुछ प्रबन्धों की स्वयं रचना की। इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थ उनके नाम से प्रसिद्ध हो गया। जहाँ तक इनके रचनाकाल का प्रश्न है, उपर्युक्त पंक्तियों में दर्शाया गया है कि ये प्रबन्ध मुख्यत: १३वीं शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर १६वीं-१७वीं शताब्दी के अन्त तक लिखे गये। कालान्तर में इनका सम्पादन एवं संशोधन होता रहा। आचार्य जिनविजयजी ने इसका अंतिम सम्पादन-काल १५वीं शती माना है। मुनि जी इस प्रति की सामग्री तथा आचार्य जिनभद्रकृत प्रबन्धावली की विषय-वस्तु को लेकर इसे पुरातनप्रबन्धसंग्रह नाम दिया है। उनका यह नामकरण वास्तविक रूप से सार्थक है।

(ग)

पुरातनप्रबन्धसंग्रह छोटे-छोटे प्रबन्धों का एक संग्रह है। स्पष्ट है, इन संग्रहों का लेखक न तो एक है और न इनका रचनाकाल एक है। आचार्य जिनविजयजी को इस प्रति के अन्तिम पृष्ठ से एक श्लोक प्राप्त हुआ जिसका आशय यह था कि संवत् १२९० (१२३३ई.) में जिनभद्र नामक एक आचार्य ने इन प्रबन्धों का संग्रह किया था। इस संग्रह का पावन उद्देश्य वस्तुपाल के पुत्र जयन्तसिंह को शिक्षा प्रदान करना था-

सिरिवत्थुपालनंदणमंतीसरजयंतसिंह भणणत्थं।
नागिंदगच्छमंडणउदयप्पहसूरिसीसेणं।।
जिणभद्देण य विक्कमकालाउ नवइ अहियवारसए।
नाणा कहाणपहाणा एस पबंधावलि रईआ।।[३]

इस गाथा से स्पष्ट है कि जिनभद्र के समय अर्थात् १२३३ई० तक इसके अधिकांश प्रबन्ध अस्तित्व में आ चुके थे। हमने उपर्युक्त पंक्तियों में जो यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि मेरुतुंग एवं राजशेखर दोनों ने अधिकांश प्रबन्धों को अपने पूर्वकर्तृक लेखकों से लिया है- इस कथन से उसकी पुष्टि होती है। प्रस्तुत प्रबन्धसंग्रह में भी कुछ कथानक ऐसे हैं जो प्रबन्धचिन्तामणि एवं प्रबन्धकोश में समान रूप से मिलते हैं। उदाहरणस्वरूप-कुमारपाल एवं विक्रमचरित्र सम्बन्धी अनेक कथानक हैं जो प्रबन्धकोश एवं पुरातनप्रबन्धसंग्रह में, थोड़े परिवर्तन के साथ, समान रूप से मिलते हैं। ठीक इसी प्रकार प्रबन्धचिन्तामणि में वर्णित उदयनप्रबन्ध, रैवतीतीर्थोद्धारप्रबन्ध, सोनलवाक्य, अंबडप्रबन्ध, अजयपालप्रबन्ध आदि कुछ प्रबन्ध दोनों में समान रूप से मिलते हैं। इस सम्बन्ध में यहाँ यह कहना महत्त्वपूर्ण है कि मेरुतुंग तथा राजशेखर के प्रबन्धों की तुलना में इस संग्रह के कुछ प्रबन्ध निश्चित ही पहले के हैं। मनीषी आचार्य जिनविजयजी ने भाषागत अपने संक्षिप्त अध्ययन में इस तथ्य की पुष्टि की है।

इसमें सन्देह नहीं कि पुरातनसंग्रह में समाविष्ट कुछ कथानक भारतीय इतिहास पुनर्लेखन के लिए अति महत्त्वपूर्ण हैं। उनसे प्राप्त विवरण के आधार पर ऐतिहासिक घटनाओं की नई इबारत लिखी जा सकती है। उदाहरणार्थ- हम पृथ्वीराजप्रकरण को लें। पाश्चात्य विद्वानों एवं उनका अनुसरण करते हुए कुछ भारतीय विद्वानों ने पृथ्वीराज के समकालीन चन्दबरदाई कृत 'पृथ्वीराजरासो' को कपोलकल्पित ग्रन्थ सिद्ध करने का प्रयास किया है। यदि हम पुरातनप्रबन्धसंग्रह के 'पृथ्वीराजप्रकरण' को पढ़ें तो सत्य का साक्षात्कार होता है। पूर्वाग्रह से ग्रसित इन विद्वानों के तर्क बालू की नींव पर आधारित दिखायी देते हैं। इस संग्रह में ऐसे पद्य वर्णित हैं जो 'पृथ्वीराजरासो' के बिलकुल समतुल्य हैं। उनकी भाषा भी आश्चर्यजनकरूप से समान है। एक पद्य की समता द्रष्टव्य है-

इक्कु बाणु पहुवीसु जु पइं कइंबासह मुक्कओ।
उर भिंतरि खडहडिउ धीर कक्खंतरि चुक्कउ।।
बीअं करि संधीउं भमइ सूमेसरनंदण!
एहु सु गडि दाहिमओ खणइ खुद्दइ सइंभरिवणु।।

फुड छंडि न जाइ इहु लुब्भिउ बारइ पलकउ खल गुलह,
नं जाणउं चंदबलद्दिउ किं न वि छुट्टइ इह फलह।।[४]
एक बान पहुमी नरेस कैमासह मुक्यौ।
डर उप्पर थरहन्यौ वीर कष्षंतर चुक्यौ।।
बियौ बान संधान हन्यौ सोमेसर नंदन।
गढौ करि निग्रह्यौ षनिव् गड्यौ संभरि धन।।
थल छोरि न जाइ अभागरौ गऽयौ गुन गहि अग्गरौ।
इम जपै चंदबरद्दिया कहा निघट्टै इय प्रलौ।।[५]

यदि हम प्रयुक्त प्रबन्ध के पृथ्वीराज से सम्बन्धित प्रकरण के अनुसार इसे संवत् १२९० (१२३३ई०) के पूर्व का मान लें, जिसके स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं है, तो 'पृथ्वीराजरासो' की ऐतिहासिकता स्वयं सिद्ध हो जाती है जो इस महान नरेश की मृत्यु के ४०-५० वर्षों के अन्दर ही रची गई प्रतीत होती है। पृथ्वीराजप्रकरण तत्कालीन जनमानस में इतना लोकप्रिय था कि चन्दबरदाई की मृत्यु के बाद भी पृथ्वीराजरासो में परिवर्द्धन/संशोधन होते रहे परन्तु उसकी ऐतिहासिकता असंदिग्ध है। इसी प्रकार इस संग्रह में तमाम ऐतिहासिक बातें भरी पड़ी हैं जिनके अन्वेषण की आवश्यकता है। चौलुक्य वंश के जयसिंह सिद्धराज एवं कुमारपाल के समय की अनेक घटनाएँ इसमें सुरक्षित हैं। पूर्व में यह उल्लेख हो चुका है कि चरित ग्रन्थों में नायक के गुणों का ही प्रदर्शन होता है लेकिन प्रबन्धों में लेखक इस बन्धन से मुक्त होता है। वह नायक की दुर्बलताओं को भी समाज के सामने प्रस्तुत करता है। उदाहरणार्थ- 'अजयपालप्रबन्ध' में राजा के निर्दयी एवं असहिष्णु चरित्र को दर्शाया गया है। कुमारपाल के इस उत्तराधिकारी पुत्र ने आचार्य हेमचन्द्र के शिष्यों के साथ अत्यन्त निर्दयता का व्यवहार किया था। उसने आचार्य रामचन्द्र को, जो एक सौ से अधिक ग्रन्थों के प्रणेता थे, तप्त धातु पर बलपूर्वक बैठाकर मार डाला था। इस घटना की जैसे आखों देखी खबर इस संग्रह में सुरक्षित है और जिसकी पुष्टि अन्य समकालीन ग्रन्थों से भी होती है।[६]

इसी प्रकार यशस्वी मन्त्रियों वस्तुपाल-तेजपाल के धार्मिक कृत्यों का जैसा सजीव वर्णन इस संग्रह में है, वह ऐतिहासिकता के काफी निकट है। उनके द्वारा किए हुए कार्यों की पुष्टि अरिसिंह कृत 'सुकृतसंकीर्तन' से होती है। यहाँ यह कहना आवश्यक है कि अरिसिंह इन दोनों मन्त्रियों के समकालीन थे और उनके विवरण की सत्यता पर सन्देह नहीं किया जा सकता। प्रस्तुत संग्रह के विवरण को देखते हुए इसकी ऐतिहासिकता स्वयं सिद्ध हो जाती है। इसी प्रकार 'कुमारपालप्रबन्ध' में घटनाओं के

विवरण सत्य के काफी निकट हैं। उनके द्वारा पशु-हिंसा का निषेध तत्कालीन साक्ष्यों के समरूप है। इस संग्रह के विवरण कुमारपालप्रतिबोध, हेमचन्द्रकृत 'महावीरचरित', 'कुमारविहारशतक', 'कुमारविहारप्रशस्ति' आदि समकालीन पुस्तकों में तदुनुरूप हैं- यह लेखक के ऐतिहासिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। कुमारपाल के मन्त्रियों में श्रीपाल, अहाड़, आम्रभट अथवा आम्बड अत्यधिक प्रसिद्ध थे- इस संग्रह में भी उनके यशोगान को प्रस्तुत किया गया है। जयसिंह सिद्धराज के मन्त्रियों के नाम भी इस संग्रह में यथावत उल्लिखित हैं तथा उनके धार्मिक क्रियाकलापों का वर्णन समकालीन साक्ष्यों के समरूप है। आचार्यों (हरिभद्र, सिद्धर्षि आदि) के वर्णन से भी ऐतिहासिक घटनाओं की पुष्टि होती है।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि पुरातनप्रबन्धसंग्रह एक ऐतिहासिक वृत्तान्त है। इसमें सन्देह नहीं कि घटनाओं के वर्णन में कल्पना का सहारा लिया गया है लेकिन निस्सन्देह कल्पनाएँ ऐतिहासिक वृत्तान्तों पर हावी नहीं हो पायी हैं। विवेक एवं धैर्य के साथ अध्ययन करने पर ऐतिहासिक तथ्यों के नजदीक पहुँचा जा सकता है। इस दृष्टि से पुरातनप्रबन्धसंग्रह मध्यकाल (मुख्यत: ८वीं-९वीं शताब्दी से लेकर १४वीं शताब्दी तक) के इतिहास को जानने का एक प्रामाणिक स्रोत है और यही इस विशिष्ट ग्रन्थ की ऐतिहासिक मूल्यवत्ता है।

संदर्भ :

१. यथाश्रुतं सङ्कलित: प्रबन्धैर्ग्रन्थो मया मन्दधियापि यत्नात् ।
प्रबन्ध चिन्तामणि, आचार्य मेरूतुग, अधिष्ठाता सिंघी जैन ज्ञानपीठ, कलकत्ता, १९३३, श्लोक ३, पृ० १२५

२. श्रीऋषभादिवर्धमानान्तानां जिनानां, चक्र्यादीनां राज्ञाम्, ऋषीणांचार्यरक्षितान्तानां वृत्तानि चरितानि उच्यन्ते। तत्पश्चात्कालभाविनां तु नराणां वृत्तानि प्रबन्धा इति'', प्रबन्धकोश, राजशेखर सूरि, सिंघी जैन ज्ञानपीठ, विश्वभारती शांतिनिकेतन, १९३१, पृ० १

३. पुरातनप्रबन्धसंग्रह, सं. जिनविजयमुनि, अधिष्ठाता सिंघी जैन ज्ञानपीठ, कलकत्ता, १९३६, प्रथम संस्करण, पृ० १३६

४. पुरातनप्रबन्धसंग्रह, पूर्वोक्त, पद्यांक २७५, पृ० ८६

५. पृथ्वीराजरासो, पद्य २३६, पृ० ४१९६

६. तत्र जिह्वां खण्डयित्वा उपविशता तेन दोधकपञ्चशती कृता।। - पुरातनप्रबन्धसंग्रह, पूर्वोक्त, पृ० ४९

*****

जैन परम्परा के परिप्रेक्ष्य में विवाह पद्धति एवं वर्ण व्यवस्था

प्रो० कमलेश कुमार जैन

सामान्य रूप से विवाह एक सामाजिक बन्धन है, किन्तु इस बन्धन को स्थायी बनाने हेतु हम उसे धार्मिक रूप दे देते हैं। धर्म की एक विशेषता यह है कि उसमें श्रद्धा अधिक और तर्क कम होते हैं। अत: तर्क-कुतर्क से बचने के लिये विवाह को धार्मिक स्वरूप प्रदान किया गया है। यदि इसे धार्मिक स्वरूप न दें तो अव्यवस्था फैल जायेगी और हम सभी का जीवन पशुवत् हो जायेगा। परस्पर में न कोई पिता होगा और न कोई पुत्र न कोई माता होगी और न कोई बेटा। हम रात-दिन भोगों में तो संलग्न रहेंगे, किन्तु हमारी परस्पर में कोई जिम्मेदारी नहीं होगी।

समाज का अर्थ ही है एक दूसरे के सुख-दु:ख में सहभागी बनना। हमारा प्रत्येक कार्य दूसरे को प्रभावित करता है, फिर चाहे वह अच्छा हो अथवा बुरा। इसलिये सामाजिक दृष्टि से अच्छे कार्यों के लिये प्रोत्साहित किया जाता है और खोटे कार्यों से विरत रहने का संदेश दिया जाता है।

चारित्रमोहनीय कर्म के वशीभूत पुरुष का स्त्री के प्रति एवं स्त्री का पुरुष के प्रति जो राग है उसकी पूर्ति हेतु विवाह किया जाता है। देव, शास्त्र और गुरु की साक्षी तथा माता-पिता एवं सगे-सम्बन्धियों की स्वीकृतिपूर्वक जो विवाह किया जाता है, वह धर्म और कुल की वृद्धि का कारण बनता है।

चारित्रमोहनीय कर्म के कारण हम अनादिकाल से भोगों अथवा पञ्चेन्द्रियों के विषय में आकण्ठ डूबे हुये हैं। इन विषय-वासनाओं से एकदम विरत होना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। कितने ही महापुरुष विवाह-बन्धन में बंधे बिना ही मुक्ति को प्राप्त हो गये हैं, किन्तु यह कथन वर्तमान पर्याय की अपेक्षा है। उन्हीं महापुरुषों की पिछली पर्यायों पर विचार करें तो वे भी उसी संसार-सागर में निमग्न रहे हैं। बाद में उन्होंने अपनी वर्तमान पर्याय से मुक्ति प्राप्त की है-

पशु और मनुष्य में भेद करते हुये नीतिकारों ने लिखा है कि-

आहार निद्रा भय मैथुनञ्च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीना:पशुभि: समाना:।।

अर्थात् आहार, निद्रा, भय और मैथुन - ये चार संज्ञायें प्रत्येक जीव में समान रूप से पाई जाती हैं। यहाँ तक कि एकेन्द्रिय वनस्पति में भी ये चार संज्ञायें पाई जाती

हैं। यद्यपि ऊपर से देखने में ऐसा प्रतीत नहीं होता है, किन्तु गहराई से विचार करने पर सभी बातें स्पष्ट हो जाती हैं। नर की अपेक्षा मादा में काम-वासना तीव्र होती है। एकेन्द्रिय वनस्पति की प्रतिनिधि मादा लतायें नर रूप वृक्ष का सहार लेती हैं अर्थात् वृक्ष से लिपट जाती हैं। यह सब अव्यक्त काम-वासना का ही प्रतीक है।

काम-वासना की तीव्रता जब मूक एकेन्द्रिय जैसे प्राणियों से लेकर संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवों तक में भी पाई जाती है तो पञ्चेन्द्रिय स्त्री-पुरुष में पाया जाना स्वाभाविक है। क्योंकि यह पूर्ण विकसित प्राणी है। चूंकि मानव जाति एक सभ्य और प्रतिष्ठित जाति है, वह विवेकवान् है, बौद्धिक स्तर उनका अत्यन्त उन्नत है, अत: सामान्य प्राणियों से मनुष्य को पृथक् करने के लिये एक मात्र धर्म या विवेक ही ऐसा है जो उसे पशुओं से पृथक् कर देता है।

धर्म दो प्रकार का है- एक सामाजिक धर्म और दूसरा आध्यात्मिक धर्म। हम चाहें तो उन्हें शास्त्रीय भाषा में व्यवहार धर्म और निश्चय धर्म भी कह सकते हैं। व्यवहार पूर्वक ही निश्चय में प्रवेश किया जा सकता है।

विवाह धर्म तो है, किन्तु वह सामाजिक धर्म है। व्यवहार धर्म है और यह धर्म यदि हम चाहें तो निश्चय के मार्ग में लगाने में साधक बन सकता है। अन्यथा विवाह जैसी सामाजिक व्यवस्था भी मनुष्य को पतन के गर्त से बचा नहीं सकती है।

जैन शास्त्रों में उल्लिखित जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष- इन सात तत्त्वों में से अन्तिम तीन अर्थात् संवर, निर्जरा और मोक्ष- ये सामाजिक व्यवस्था विवाह में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं कार्यकारी हैं। संवर तत्त्व की दृष्टि से विचार करें तो विवाह रूप सामाजिक धर्म हमें असीमित भोगों को भोगने की अपेक्षा सीमित अर्थात् एकदेश भोग भोगने में सहायक बनता है। अर्थात् विवाह वह सामाजिक बन्धन है, जो स्त्री और पुरुष दोनों को काम-भोगों के अथाह सागर से निकालकर उन्हें एक दूसरे में ही संतुष्ट रहने के लिये प्रेरित करता है। इस प्रकार हम विवाह के माध्यम से अपने काम-भोगों का एकदेश संवर करने में सफल हो सकते हैं और क्रमश: ब्रह्मचर्याणुव्रत तथा ब्रह्मचर्य महाव्रत को जीवन में धारण करके काम-भोगों से लब्ध कार्यों की निर्जरा करके अन्त में मुक्ति को प्राप्त कर सकते हैं।

आचार्य पूज्यपाद ने कन्यादान को विवाह कहा है।[१] इसी को और स्पष्ट करते हुये आचार्य अकलङ्क देव ने लिखा है कि सातावेदनीय और चारित्रमोह के उदय से जो कन्या का वरण किया जाता है वह विवाह है।[२] इसी का समर्थन आचार्य विद्यानन्द ने भी किया है।[३] आचार्य सोमदेवसूरि थोड़ा सा कुछ आगे बढ़ते हुये कहते हैं कि-

'युक्तितो वरणविधानम् अग्निदेवद्विजसाक्षिकं च पाणिग्रहणं विवाह'[४] अर्थात् युक्ति से जो वरण का विधान है तथा अग्निदेव और ब्राह्मण की साक्षी में जो कन्या के हाथ को ग्रहण किया जाता है वह विवाह है।

यहाँ आचार्य सोमदवसूरि वैदिक परम्परा की ओर झुके हुये प्रतीत होते हैं। क्योंकि जैनशास्त्रों में जहाँ देव, शास्त्र और गुरु की साक्षी पूर्वक कन्या के वरण का विधान है, वहीं आचार्य सोमदेवसूरि अग्निदेव एवं ब्राह्मण की साक्षी पूर्वक कन्यावरण की बात करते हैं। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य सोमदेवसूरि का एक मन्त्र वाक्य है कि-

सर्व एव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः।

यत्र सम्यक्त्वहार्निन यत्र न व्रतदूषणम् ।।[५]

अर्थात् जहाँ सम्यग्दर्शन में किसी भी प्रकार का दोष न लगता हो तथा गृहीत व्रतों में दूषण न लगता हो ऐसे सभी कार्यों में लोक प्रमाण है। अर्थात् जैसी लोक व्यवस्था है तथैव सभी जैन धर्मावलम्बियों को स्वीकार करना चाहिये। इससे अन्य चाहे जो भी सिद्ध हो, किन्तु सोमदेवसूरि की दृष्टि में विवाह एक लोक व्यवस्था है, लौकिक धर्म है। अतः लोकाचार के अनुसार ही उन्होंने अग्निदेव एवं ब्राह्मण की साक्षी पूर्वक कन्यावरण को विवाह कहा है।

वैदिक धर्मग्रन्थों में विवाह आठ प्रकार का बतलाया गया है-

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।

गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चष्टमोऽधमः।।[६]

अर्थात् ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पिशाच् - ये आठ प्रकार के विवाह हैं।

ब्राह्म- इसमें आभूषणों से अलंकृत कन्या वर से बिना कुछ लिये उसे दान कर दी जाती है। यह सर्वश्रेष्ठ है।

दैव- इसमें कन्या यज्ञ कराने वलो ऋत्विज् को दे दी जाती है।

आर्ष- इसमें दुलहिन का पिता वर से एक या दो जोड़ी गायें प्राप्त करके उसे दे देता है।

प्राजापत्य- इसमें लड़की का पिता वर से बिना किसी प्रकार का उपहार लिये केवल इसलिये कन्यादान करता है कि जिससे वह सानन्द, श्रद्धा और भक्तिपूर्वक साथ-साथ रहकर दाम्पत्य जीवन बिताये।

आसुर- इसमें वर वधू को उसके पिता अथवा पैतृक बान्धवों से खरीद लेता है।

गान्धर्व- इसमें युवक और युवती का पारस्परिक प्रेम ही मुख्य है। इसमें न किसी रीति-रस्म की आवश्यकता होती है और न सगे-सम्बन्धियों की अनुमति।

राक्षस- इसमें दुलहिन के सम्बन्धियों को युद्ध में परास्त कर कन्या को बलात् उठाकर ले जाया जाता है।

पैशाच- इसमें किसी सोई हुई, प्रमत्त या पागल कन्या का उसकी स्वीकृति के बिना उसका कौमारहरण किया जाता है। यह निम्न कोटि का विवाह है।

सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा दंहो यत्रोपगच्छति।

स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः।।[७]

दैव, शास्त्र और गुरु को नमस्कार कर तथा अपने भाई-बन्धुओं की साक्षीपूर्वक जिस कन्या के साथ विवाह किया जाता है वह विवाहिता स्त्री कहलाती है। ऐसी विवाहिता स्त्री के अतिरिक्त अन्य सब पत्नियाँ दासी कहलाती हैं। उनमें जो विवाहित पत्नी है उसके दो भेद हैं और उन दोनों के लक्षण भी अलग-अलग हैं। कर्मभूमि में रूढ़ि से चली आई जो अलग-अलग जातियाँ हैं, उनमें से अपनी जाति की कन्या के साथ विवाह करना और अन्य जाति की कन्या के साथ विवाह करना। इस प्रकार अपनी जाति की विवाहिता पत्नी और अन्य जाति की विवाहित पत्नी के भेद से पत्नियाँ दो प्रकार की हैं। अपनी जाति की जिस कन्या के साथ विवाह किया जाता है, वह धर्मपत्नी कहलाती है। ऐसी धर्मपत्नी ही धर्मकार्यों में साथ रह सकती है।[८]

पिता की साक्षीपूर्वक अन्य जाति की कन्या से जो विवाह किया जाता है वह भोगपत्नी कहलाती है। क्योंकि वह केवल भोग का ही साधन है। इस प्रकार अपनी जाति और पर जाति के भेद से स्त्रियाँ दो प्रकार की हैं तथा जिसके साथ विवाह नहीं हुआ है ऐसी स्त्री दासी या चेरी कहलाती है। ऐसी दासी केवल भोगाभिलाषिणी होती है।[९]

धर्म के जानने वाले पुरुषों को भोग पत्नी का पूर्ण रूप से त्याग कर देना चाहिये। यद्यपि विवाहिता होने से वह ग्रहण करने योग्य है तथापि धर्मपत्नी से वह सर्वथा भिन्न है। इसलिये उसके सेवन करने में दोष ही है। दासी के साथ विषय सेवन करने से वज्रलेप के समान पापों का संचय होता है। यदि पुण्यार्जन करने में भावों की शुद्धता ही कारण है, क्योंकि वस्तु का स्वभाव भी इसी प्रकार है तो फिर दासी के साथ विषय-सेवन करने से वह परिणामों की शुद्धता नष्ट हो जाती है।[१०]

विवाह से मैथुन क्रिया का निकट का सम्बन्ध है और मैथुन क्रिया में हिंसा होती है। इसी बात को स्पष्ट करते हुए आचार्य अमृतचन्द्रसूरि लिखते हैं कि-

हिंस्यन्ते तिलनाल्यां तप्तायसि विनिहिते तिला यद्वत्।

बहवो जीवा योनौ हिंस्यन्ते मैथुने तद्वत् ।।[११]

अर्थात् जिस प्रकार तिलों से युक्त नाली में तपी हुई लौहशलाका डालने से तिलों का नाश हो जाता है, उसी प्रकार मैथुन क्रिया करने पर योनि में रहने वाली जीवराशि का नाश होता है। इसलिये वे आगे लिखते हैं कि-

ये निजकलत्रमात्रं परिहर्तुं शक्नुवन्ति न हि मोहात् ।

नि:शेष शेषयोषिन्निवेषणं तैरपि न कार्यम् ।।[१२]

अर्थात् जो पुरुष चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से अपनी स्त्री मात्र को नहीं छोड़ सकते हैं, उनके द्वारा भी समस्त शेष अन्य स्त्रियों का सेवन नहीं करना चाहिये।

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय की मंगला नामक संस्कृत टीका में मुनिश्री १०८ प्रणम्यसागर जी महाराज ने लिखा है कि-

स्वदारमात्रसन्तोषेऽशेषेच्छासमुद्रशोषणाद् देशव्रती भवतीतरथा व्यभिचारप्रसक्ति:।[१३]

अर्थात् अपनी स्त्री को छोड़कर शेष समस्त स्त्रियों में काम की अभिलाषा नहीं करनी चाहिये। स्वस्त्री में सन्तोष होने पर बाकी समस्त स्त्रियों में इच्छा रूपी समुद्र के शोषण से देशव्रती संज्ञा होती है, अन्यथा व्यभिचार का प्रसंग आयेगा।

आचार्य जिनसेन के अनुसार विवाह सन्तानोत्पत्ति के लिये ही किया जाता है, वे लिखते हैं कि-

सन्तानार्थमृतावेव कामसेवां मिथो यजेत् ।[१४]

अर्थात् केवल सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा से ऋतुकाल में ही परस्पर काम-सेवन करें।

जहाँ तक वर्ण व्यवस्था का प्रश्न है तो वर्ण व्यवस्था के सम्बन्ध में जैन ग्रन्थों में लिखा है कि कृतयुग में कल्पवृक्षों का अभाव हो गया। अत: भूख से पीड़ित प्रजा अन्तिम कुलकर नाभिराय के पास गई तो उन्होंने प्रजा की पीड़ा सुनकर कुमार आदिनाथ के पास यह कहकर भेज दिया कि कुमार ही इस दु:ख से मुक्त करने में

सहायक हो सकते हैं। भूख से पीड़ित प्रजा के उपस्थित होने पर कुमार आदिनाथ ने असि, मषि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प- इन षट्कर्मों का उपदेश दिया। तदनुसार जिन्होंने असि कर्म के माध्यम से देश की सुरक्षा करते हुये अपनी आजीविका प्रारम्भ की वे क्षत्रिय कहलाये। जिन्होंने कृषि और वाणिज्य कर्म को अपनाकर अपनी आजीविका प्रारम्भ की वे वैश्य कहलाये और जिन्होंने विद्या और शिल्प को अपनी आजीविका का आधार बनाया वे शूद्र कहलाये। इस प्रकार आजीविका के आधार पर आदिनाथ को तीन वर्णों की उत्पत्ति में कारण बतलाया गया है। मषि कर्म किस वर्ण का कार्य था इसका उल्लेख देखने में नहीं आया है। सम्भव है इस कार्य को सभी वर्ण के लोगों ने अपनी आजीविका का साधन बनाया हो।[१५] प्रजा को कृषि आदि कर्मों में लगाने का सर्वप्रथम उल्लेख आचार्य समन्तभद्र ने किया है।[१६] तदनन्तर अधिकांश पुराणकारों ने इसका उल्लेख किया है और स्पष्ट लिखा है कि भगवान् ऋषभदेव ने षट्कर्मों के साथ ही तीन वर्णों की भी स्थापना की है और भरत चक्रवर्ती ने ब्राह्मणवर्ण की स्थापना की है।

सोमदेवसूरि ने लौकिक धर्म का जैनीकरण किया है। इसके मूल में तत्कालीन ब्राह्मण धर्म का वर्चस्व ही प्रमुख प्रतीत होता है।

यदि जन्म से वर्ण व्यवस्था को स्वीकार कर लिया जाये तो जिस व्यक्ति ने शूद्र वर्ण में जन्म लिया है वह आजीवन शूद्र ही रहेगा, किन्तु यदि आजीविका के आधार पर वर्ण व्यवस्था को स्वीकार किया जाता है तो अच्छे कार्य करने पर शूद्र वर्ण में उत्पन्न व्यक्ति भी ब्राह्मण आदि वर्णों की कोटि में आ सकता है।[१७]

सोमदेवसूरि के अनुसार जन्म से वर्ण व्यवस्था का कथन न तो ऋषभदेव ने किया है और न ही चक्रवर्ती भरत ने। इसका आधार तो महापुरुष न होकर वैदिक ग्रन्थ श्रुति और स्मृति ही हैं।[१८]

सिद्धान्ताचार्य पण्डित फूलचन्द्रजी शास्त्री ने लिखा है कि- जैनधर्म की अपेक्षा से इतना ही कहा जा सकता है, 'आध्यात्मिक क्षेत्र में यह (वर्ण व्यवस्था) ग्राह्य न होकर भी सामाजिक क्षेत्र में व्यवहार से मान्य ठहराई गई है। इसलिये ऋषभदेव ने तीन वर्ण की और भरत चक्रवर्ती ने ब्राह्मण वर्ण की स्थापना, जैसा कि सोमदेवसूरि कहते हैं कि एक तो की न होगी और यदि की भी होगी तो वह ऊपर से नहीं लायी गयी होगी, किन्तु उन्होंने कर्म के अनुसार नामकरण करके यह प्रजा के ऊपर छोड़ दिया होगा कि वह अपने-अपने कर्म के अनुसार उस-उस वर्ण को स्वीकार कर ले।'[१९] पण्डित जी आगे लिखते हैं कि- वर्णाश्रम धर्म जैनधर्म का अंग नहीं है और इसलिए हम

वर्णाश्रम धर्म के आधार पर शूद्रों के धर्म सम्बन्धी नैसर्गिक अधिकारों का अपहरण नहीं कर सकते।[२०]

अनेक ग्रन्थों का आलोड़न-विलोड़न करने के पश्चात् पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री ने निष्कर्ष स्वरूप लिखा है कि- जैनधर्म में वर्ण व्यवस्था को रञ्च मात्र भी स्थान नहीं है। यदि जैन धर्म के अनुयायी लौकिक दृष्टि से स्वीकार भी करते हैं तो उसे कर्म के आधार से ही स्वीकार किया जा सकता है, जन्म से नहीं।[२१]

विवाह एक सामाजिक व्यवस्था है। इसमें योग्य वर एवं योग्य वधु का परस्पर चयन ही मुख्य है। सामाजिक दृष्टि से सवर्ण विवाह ही करना चाहिए। वैसे पुराणों में सवर्ण के साथ ही असवर्ण विवाह के भी उदाहरण मिलते हैं।

मनुस्मृति आदि वैदिक ग्रन्थों में विवाह के जो नियम हैं उन्हें महापुराण के लेखन काल से लेकर जैन परम्परा में भी स्वीकार कर लिया गया है। परन्तु इतने मात्र से पूर्वकाल में उन नियमों का उसी रूप में पालन होता था, यह नहीं कहा जा सकता है।[२२] क्योंकि पुराणों में लिखा है कि वीरक श्रेष्ठी की स्त्री वनमाला को राजा सुमुख ने बलात् अपने घर में रख लिया था और उसे पटरानी बना लिया। कालान्तर में दोनों ने मुनि को आहार दिया और पुण्य बन्धकर भोग-भूमि प्राप्त की।[२३] इसी प्रकार प्रद्युम्नचरित में आया है कि- हेमरथ राजा की पत्नी चन्द्रप्रभा को राजा मधु ने बलात् अपहरण कर उसे पटरानी बनाया और कालान्तर में दोनों ने मुनिधर्म और आर्यिका के व्रत को स्वीकार कर सद्गति पाई।[२४] यहाँ इस कथन से मात्र इतना ही अभीष्ट है कि विवाह एक सामाजिक व्यवस्था है और इसके कारण किसी के भी धार्मिक क्रिया-कलापों पर अंकुश नहीं लग सकता है। हाँ! सामाजिक व्यवस्था बनी रहे इसके लिये समाज में समय-समय पर अनेक नियम बनाये गये हैं, जिन्हें सामाजिक दृष्टि से स्वीकार भी करना चाहिये।

संन्दर्भ :

१. कन्यादानं विवाहः। -सर्वार्थसिद्धि ७/२८

२. सद्वेद्यचारित्रमोहोदयात् विवहनं कन्यावरणं विवाह इत्याख्यायते - तत्त्वार्थवार्तिक ७/२८/१

३. सद्वेद्यचारित्रमोहोदयात् विवहनं विवाहः। - तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक ७/२८

४. नीतिवाक्यामृत ३१/३

५. यशस्तिलकचम्पू, महाकाव्यम्, अष्टम आश्वासः- अनुवादक पंडित सुन्दरलाल शास्त्री, श्री महावीर जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी, १९७१, पृ० ३७९

६. मनुस्मृति ३/२१ (द्रष्टव्य- संस्कृत-हिन्दी-कोश, विवाह शब्द)
७. वही ३/३४
८. लाटी संहिता, पद्य १/१७८-१८०
९. वही, पद्य १/१८३-८४
१०. वही, पद्य १/१८६-१८८
११. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, कारिका, 108
१२. वही, कारिका, ११०
१३. वही, कारिका, ११० की टीका
१४. महापुराण, ३८/१३४
१५. वर्ण, जाति और धर्म, पृ० १७४
१६. वही
१७. वही, पृ० १८०
१८. वही, पृ० १८०
१९. वही, पृ० १८१
२०. वही, पृ० १८२
२१. वही, पृ० १८६
२२. वही, पृ० १९०
२३. वही, पृ० १८९-१९०
२४. वही, पृ० १९०

*****

इण्टरनेट पर जैन साहित्य एवं शोध सामग्री

डॉ० विवेकानन्द जैन

सूचना तकनीकी का प्रभाव हमारे जीवन के सभी क्षेत्रों के साथ-साथ लेखन तथा प्रकाशन पर भी पड़ा है। आज सूचना स्रोत इलेक्ट्रानिक तथा प्रिंटेड दोनों रूपों में प्रकाशित हो रहे हैं। वर्तमान समय में धार्मिक एवं दार्शनिक जैन साहित्य के प्राचीन दुर्लभ ग्रंथ तथा शोध सामग्री भी इण्टरनेट पर उपलब्ध हैं, उन्हें कैसे तथा कहाँ से प्राप्त किया जा सकता है? इस विषय पर जानकारी इस लेख में दी गई है।

प्रस्तावना : जैन धर्म के विस्तार एवं अंतर्राष्ट्रीयकरण में ऑनलाइन जैन डिजिटल ई-लाइब्रेरी (www.jainelibrary.com), इण्टरनेशल दिगम्बर जैन आर्गेनाइजेशन (www.idjo.org) तथा इंटरनेट आधारित संस्थाओं एवं पुस्तकालयों की वेबसाइट्स का विशेष योगदान है। आज जैन धर्म तथा जैन साहित्य विश्व के १०० से भी अधिक देशों में इण्टरनेट आधारित डिजिटल लाइब्रेरी के माध्यम से पहुँच रहा है। अत: इण्टरनेट तथा टी०वी० चैनल्स ने भी जैन धर्म के प्रचार प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

डिजिटल लाइब्रेरी ऑफ इण्डिया : इस वेबसाइट के माध्यम से अनेक ऐतिहासिक महत्त्व के धार्मिक, सामाजिक ग्रंथों को प्राप्त किया जा सकता है। इस पर उपलब्ध ग्रंथ सभी के लिये नि:शुल्क हैं जिन्हें ऑनलाइन पढ़ा भी जा सकता है तथा आवश्यकतानुसार डाउनलोड भी किया जा सकता है। इस हेतु वेबसाइट देखें : www.dli.gov.in or www.dli.ernet.in

(चित्र १ : डिजिटल लाइब्रेरी ऑफ इण्डिया : www.dli.gov.in)

डिजिटल लाइब्रेरी ऑफ इण्डिया पर अक्टूबर २०१५ तक जैन धर्म से सम्बन्धित लगभग ३६०९ पुस्तकें उपलब्ध हैं जिनके लगभग ११ लाख पृष्ठों की सामग्री इस वेबसाइट पर है।

डिजिटल लाइब्रेरी ऑफ इण्डिया पर पुस्तकों को लेखक के नाम से (Author), पुस्तक के नाम से (Title), भाषा (Language), विषय (Subject), कीवर्ड (Keyword), प्रकाशन वर्ष (Year), केंद्र या संस्था (Centre/Name of Library) आदि अनेक तरीकों से खोजा जा सकता है। इस वेबसाइट पर अधिकतर प्राचीन ग्रंथ ही उपलब्ध हैं जो कि कॉपीराइट से मुक्त हैं।

जैन ई-लाइब्रेरी (www.jainelibrary.org) :

मैंने व्यक्तिगत रूप से "जैन ई-लाइब्रेरी' को जैन साहित्य से सम्बन्धित सामग्री के लिये बहुत ही उपयोगी पाया। इसके संग्रह में लगातार विकास हो रहा है। इसमें नयी सामग्री जुड़ती रहती है साथ ही नये-नये उपयोगकर्ता भी देश-विदेश से जुड़ते रहते हैं।

"जैन ई-लाईब्रेरी" पर पुस्तकों को लेखक के नाम से, पुस्तक के नाम से या उसके किसी एक शब्द से भी खोजा जा सकता है। इसमें खोजने के लिए उच्चस्तरीय गहन सर्च (Advanced Search) की भी सुविधा है। इस वेबसाइट पर ६००० से अधिक पुस्तकें, ४००० से अधिक लेख तथा अनेक पाण्डुलिपियाँ हैं।

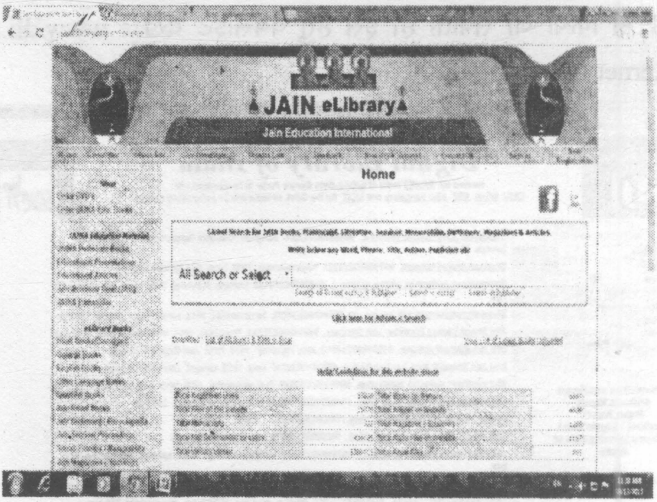

(चित्र २ : जैन ई-लाइब्रेरी : www.jainelibrary.org)

इण्टरनेशनल दिगम्बर जैन ऑर्गेनाइजेशन (www.idjo.org) द्वारा संचालित वेबसाइट पर भी पुस्तकें, मेनुस्क्रिप्ट्स तथा अन्य धार्मिक सामग्री उपलब्ध हैं। इसके अलावा कुछ अन्य उपयोगी वेबसाइट jainworld.com; Jinvaani.org; jainonweb.com; jaindharmonline.com आदि हैं।

जैन ग्रंथ्स (www.jaingranths.com) : यह जैन ग्रंथों के लिये एक उपयोगी वेबसाइट है। इस वेबसाइट पर दिगम्बर परम्परा के ७०५ तथा श्वेताम्बर परम्परा के ३११ ग्रंथ सहज उपलब्ध हैं। ये ग्रंथ उन सभी व्यक्तियों के लिये हैं जो जैन धर्म के सिद्धान्तों में रुचि रखते हैं या जैन धर्म के प्रामाणिक प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन करना चाहते हैं।

(Fig.3 : Website of Jain Granths : http://www.jaingranths.com)

जिनवाणी (www.jinvaani.org) : यह जैन धर्म के प्राचीन ग्रंथों के लिये एक उपयोगी वेबसाइट है जिस पर पुस्तकें, लेख, प्रवचन तथा बच्चों के लिये प्रारम्भिक जानकारी की सामग्री उपलब्ध है।

जैन वर्ल्ड डॉट कॉम (www.jainworld.com) : इस वेबसाइट पर बहुत अधिक संख्या में ई-बुक्स तथा अन्य धार्मिक सामग्री है जो कि १५० देशों के ९२,०० से अधिक पाठकों द्वारा प्रतिदिन उपयोग की जा रही है।

(Fig.4 : Website of Jain world : http://www.jainworld.com)

जैन शोध सामग्री : शोध सामग्री के लिये जैन संस्थाओं या उनसे सम्बन्धित पुस्तकालयों की वेबसाइट के माध्यम से जानकारी प्राप्त की जा सकती है। भारत देश के विश्वविद्यालयों से हुये शोध कार्यों को इंफ्लिबनेट (www.inflibnet.ac.in) की वेबसाइट पर उपलब्ध इण्डकेट : ऑनलाइन यूनियन कैटलॉग (http://indcat.inflibnet.ac.in) से देखा जा सकता है।

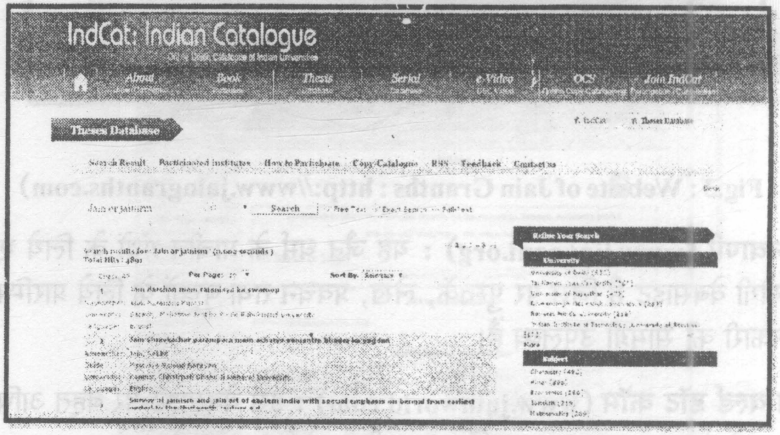

(चित्र ५ : इण्डकेट : ऑनलाइन यूनियन कैटलॉग (http://indcat.inflibnet.ac.in)

इस वेबसाइट पर २३७ विश्वविद्यालयों के २,६७,९१९ शोध-प्रबंधों की सूची है। इसके अनुसार वर्ष २०१५ तक जैन धर्म एवं दर्शन से सम्बन्धित ५२५ से अधिक शोध-प्रबंध भारतीय विश्वविद्यालयों में जमा हो चुके हैं। इस वेबसाइट से अन्य विषयों के शोध कार्यों के बारे में भी जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

विगत कुछ वर्षों से इंफ्लिबनेट ने शोध-गंगा नाम से एक प्रोजेक्ट प्रारम्भ किया है जिसपर २३१ विश्वविद्यालयों की ५८,००० से अधिक फुलटेक्स्ट थीसिस को देखा तथा डाउनलोड भी किया जा सकता है।

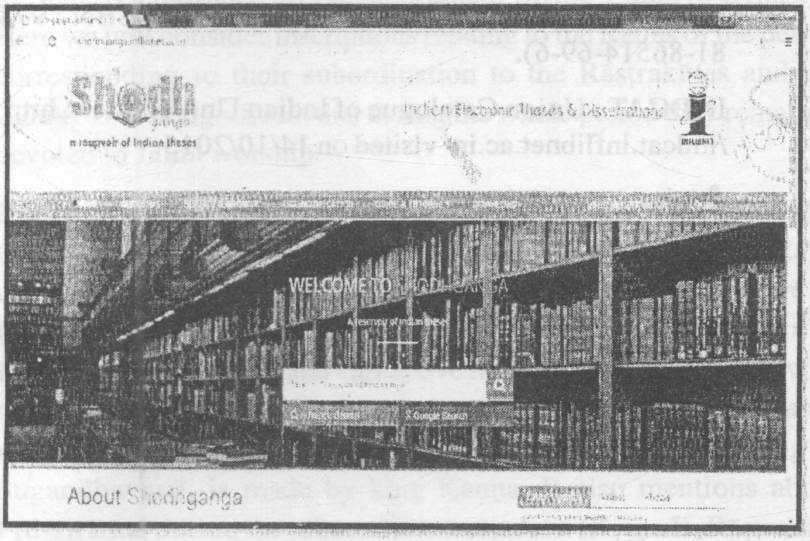

(चित्र ६ : शोध गंगा : ऑनलाइन फुलटेक्स्ट थीसिस
(shodhganga.inflibnet.ac.in)

निष्कर्ष : आज इंटरनेट ने सूचना के द्वार सभी के लिये खोल दिये हैं। सूचना का आदान-प्रदान भी बहुत तेजी से बढ़ा है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम इण्टरनेट पर उपलब्ध धार्मिक साहित्य तथा अन्य सूचना स्रोतों का सही तरह से शोध कार्यों में, साहित्य के विकास में तथा समाज के उत्थान में उपयोग करें। आशा है ऊपर बतायी गयी वेबसाइट के माध्यम से आवश्यक अति प्राचीन पुस्तकों एवं अन्य जानकारियों का लाभ समाज के सभी लोग उठाकर लाभान्वित होंगे।

संदर्भ :

१. जैन ई-लाइब्रेरी (www.jainelibrary.org) visited on 13/10/2015.

२. इण्टरनेशनल दिगम्बर जैन ऑर्गेनाइजेशन (www.idjo.org) visited on 13/10/2015.

३. डिजिटिल लाइब्रेरी ऑफ इण्डिया (www.dli.gov.in) visited on 13/10/2015.

४. जैन, विवेकानंद तथा दांगी, रामकुमार (२०१५) इण्टरनेट पर हिंदी के सूचना स्रोत तथा शोध सामग्री, सूचना प्रबंधन, संपा० सुरेश कुमार जिंदल तथा फूलदीप कुमार, रक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली, पृ० 103-107 (ISBN : 978-81-86514-69-6).

५. INDCAT : Union Catalogue of Indian Universities : http://indcat.inflibnet.ac.in/ visited on 14/10/2015.

६. जैन ग्रंथ्स (www.jaingranths.com)

७. जिन वाणी (http://www.jinvaani.org)

८. शोध गंगा (http://shodhganga.inflibnet.ac.in/).

*****

Jaina Inscriptions related to the Ratta Chieftains

Pinal Jain

The Rattas were chieftains of Veṇugrāma in modern Belgaum and of Sugandhavartī which is also located in the same region. According to J.F. Fleet the Rattas were first raised to the position of chieftains by Rāṣṭrakūṭa ruler Kṛṣṇarāja II. Ratta chief Pṛthvīrāma was subordinate of Kṛṣṇarāja II but his grandson, Śāntivarmā was a subordinate of Cālukya king Tailapdeva II and his successors down to Senā II continued to be subordinate of the Cālukya dynasty.[1] Here we will consider inscriptions relating to the Rattas of the period corresponding to their subordination to the Rāṣṭrakūṭas and the Cālukyas. It is significant that during the whole period they remained devoted to Jaina worship.

Inscription no. II[2,3] is on a stone slab built into the wall, located at the left side of a Jaina temple at Saundatti in Parasgarha Taluka of the Belgaum district. The emblems on the top of the stone are as follows- in the centre, a seated figure of Jinendra; to the right of it, a crooked knife, a cow and calf above it; and to the left, the Sun with the Moon above it. In this inscription the grant of six *nivartanas* (a measurement of land) in the village of Mulgunda, belonging to Sugandhavartī, is made by king Kaṇṇa. It also mentions about Pṛthvīrāma, during the reign of Kṛṣṇarājadeva (Kṛṣṇa II, Rāṣṭrakūṭa ruler) built a temple of Jina in the village of Sugandhavartī and allotted eighteen *nivartanas* of land to it. Pṛthvīrāma is also described as the beloved of goddess of bravery, a very thunderbolt to the mountains to the hostile chieftains, the Sun of the white lotus which were learned men, the best of good warriors and the granter of all the wishes of his servants.

Inscription no. III[4] records that king Śāntivarmā, having washed the feet of Bāhubalī Bhaṭṭāraka, alloted to the Jaina temple that he had built in Sugandhavartī one hundred and fifty *mattars* of land. The inscription appreciates the ascetics of Kandaragaṇa. It says about Ravicandra-svāmī that kings bowed at his lotus feet. About sage

Arhanandī it states that he has destroyed passion with his sword which is lustre of his uninterrupted and good penances. About Śubhacandrasiddhāntadeva it says that his feet are worshipped by kings. Praising Prabhācandradeva it says that he has subdued the kings in form of bondage of *karma.*

Inscription no. V[4] is from a stone tablet in a Jaina temple at Kalholi, in the Gokak Taluka of Belgaum district. It records a grant made by Ratta chieftain king Rāja and Śri-Kārtavīryadeva. It says that at the time of king Rāja the ocean of Jaina religion had become full and his wife Mailadevī was devoted to the worship of the lotus feet of Jina. King Rāja's daughter Candrikādevī was like the beautiful moonlight which caused the increase of the nectar of religion, which was celebrated throughout the world. She appears like the wife of Indra when engaged in the worship of Jina. About king Rāja it is said, "he protects the world with his greatness which consists in his being supreme all over those learned in the worship in Jina, in his being the best of holy men, in his being a very ocean in respect of abundance of his good qualities and who duly honours kings of Jaina religion."

The inscription further says "other kings are addicted to the forbidden recreatns of gaming, hunting, eating flesh, associating with courtesans, running after other men's wives, mixing with low people, stealing and unfair ram-fighting and cock-fighting; but even apart from that, are they like you? O king Rāja! devoted to the worship of Jina giving gifts to world-renowned saints?"

The inscription states about king Rāja- "he whose head is always purified by the fragrant waters of the rites of the Jaina religion, he who always relates the legend of Jaina religion, a very moon to the ocean of nectar of the doctrines of Jina, the mine of the jewel of upright behavior-caused to be erected, a temple of Jina at Kalpole, which is the best (town) in the whole world wonderful to be held, the diadem of the earth, having three pinnacles that are unparallaled, so that Brahmā, Viṣṇu and Śīva were charmed with it and said '(the Jaina religion is) a spotless religion." Here Jainism is seen to be given preference over Brahmanism.

King Rāja is said to have erected at Sindana-Kalpole, a place of retreat for the high-minded devotees of the God Śāntinātha and presented it to his spiritual preceptor Śubhacandra Bhaṭṭārakadeva.

Another Ratta chieftain Śrī-Kārtavīryadeva gave a grant of a cultivated land measuring two thousand *kambas* to the temple at Sindana-Kalpole, which was built by king Rāja for the purposes of *aṅgabhoga* and *raṅgabhoga* of God Śāntinātha, for the purpose of repairing anything belonging to the temple that might be broken or torn or worn out and for the purpose of providing food, wholesome medicine and instruction in the sacred scriptures for the holy men living there. The abvoe king is said to be the high-priest of the province as well as of the Jaina temple of God Śāntinātha grant every boon to king Rāja that he asks for. The present inscription shows king Rāja not only as a patron of Jainism but also as being a Jaina follower.

Inscription no. VIII[6] is on a stone that was formerly erected inside a Jaina temple at Konur, the ancient Kondanuru, in the Gokak Taluka of Belgaum district. The inscription mentions Cālukya king Tribhuvanamalla or Vikramāditya II and is inscribed during the reign of his son Jayakarṇa. According to Fleet Jaykarṇa's name does not occur in Sir W. Elliot's list of Cālukya kings nor in Mr. Wathen's summary as given in Thomas' edition of Princep's *Antiquities*. Two subordinate governors of Jayakarṇa are mentioned-Cāmaṇḍa, the *Daṇḍādhipa* or commander of the forces, who was governing the country of Kuṇḍī, and the Maṇḍaleśvara or chieftain king Senā, whose designation is not specified. The Senā introduced here is probably the second of that name in the list of the Rattas.

At the starting of the inscription Lord Jina is requested to bless the king Nidhiga (who belongs to the family or sect called Balātkāragaṇa who held the position of high-priests at Kondanuru under king Senā) with long life and riches and is said to be desirous of emancipation. This king Nidhiga or Nidhiyama or Nidhiyamagamaṇḍa built in Kondanuru a shrine of Jina and granted to it two *mattaras* of cultivated land, twelve houses, one oil-mill and one garden in the Śaka year 1009 (A.D. 1087-88).

The inscription records a second grant to the same tample by Mahāmaṇḍaleśvara king Kaṇṇa who came to worship at that temple of Jina in the Śaka year 1043 (A.D. 1121-2). A third grant was made by Jayakarṇa during his father's reign. A fourth grant is made by Nidhiyamagamaṇḍa, consisting of a house together with one hundred and fifty *kammas* of land in the circle of Kuṇḍī. Besides these grants in this inscription it is said about king Cāmaṇḍa, Daṇḍādhipa of of king Jayakarṇa, that he is the granter of the boons to good people, governing the Earth with awards of severe punishment to the wicked and protection to the good.

Thus, the above inscriptions relating to the Ratta Chieftains of Saundatti and Belgaum show many traits of the influence of the Jaina religion upon them. They not only built many Jaina temples and made grants of them but also tried to follow some of the Jaina ideals and if not, then a least, presented themselves in that way in their inscriptions.

References :

1.

Name of Ratta Chieftain	To whome subordinate	Dates established by these inscriptions
Pṛthvīrāma	The Rāṣṭrakūṭa Kṛṣṇarāja, who was ruling in Śaka 798 and in Śaka 825	About Śaka 800
Śāntivarmā	The Cālukya Tailapadeva II, Śaka 895 to 919	Śaka 903
Kārtavīrya I	The Cālukya Someśvaradeva I, Śaka 962? to 991?	.....
Aṅka	The Cālukya Someśvaradeva I	Śaka 971
Kaṇṇa II	.....	Śaka 1009
Kārtavīrya II	The Cālukya Someśvaradeva II, Śaka 991? to 998, and the Cālukya Vikramāditya II, Śaka 998 to 1049	Śaka 1010
Senā II	Jayakarṇa, son of the Cālukya Vikramāditya II. Afterwards independent	About Śaka 1050

Kārtavīrya IV and Mallikārjuna	Independent.....	Śaka 1124 and 1127
Kārtavīrya IV alone	Ditto.....	Śaka 1141
Lakṣmīdeva II	Ditto.....	Śaka 1151

The table given here is extracted from the table given by Fleet in JBBRAS, Vol.X, 1871-74, P. 187

2. Here the number is given in accordance to the number ascribed to inscriptions by fleet in JBBRAS, Vol. X, 1871-74, P. 199.

3. JBBRAS. Vol. X, 1871-74, pp. 199-203.

4. Ibid, pp. 208-12.

5. Ibid, pp. 229-39.

6. Ibid, pp. 293-98.

Bibliography:

1. Altekar, A.S., *Rashtrakutas and Their Times*, Oriental Book, Poona, 1934.

2. Ayyangar, M.S. and Rao, B. Sheshagiri, *Studies in South Indian Jainism*, Part 1, South Indian and Part 2, *Andhra Karnataka Jainism*, Delhi, 1998.

3. Desai, P.B., *Jainism in South India and Some Jaina Epigraphs*, Sholapur, 1957.

4. Jain, K.C. *History of Jainism : Historical Survey and Spread of Jainism*, Vol. 2, New Delhi, 2010.

5. Journal of Bombay Branch of *Royal Asiatic Society*, Vol. X.

6. Kalghatgi, T.G. (ed.) *Jainism and Karnataka Culture*, Karnatak University, Dharwar, 1977.

7. Sharma, S.R., *Jainism and Karnataka Culture*, Dharwar, 1940.

*****

पार्श्वनाथ विद्यापीठ समाचार

१. लाला हरजसराय जैन स्मृति व्याख्यानमाला के अन्तर्गत डॉ० अरुण प्रताप सिंह का व्याख्यान

इस व्याख्यानमाला के द्वितीय पुष्प के रूप में डॉ०अरुण प्रताप सिंह, एसोसिएट प्रोफेसर, श्री बजरंग स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, सिकन्दरपुर, बलिया का व्याख्यान ''मौर्य काल में जैन धर्म'' विषय पर आयोजित किया गया। व्याख्यानमाला सत्र की अध्यक्षता मानव संस्कृति शोध संस्थान के निदेशक डॉ० झिनकू यादव ने की।

अपने व्याख्यान में डॉ० सिंह ने मौर्य काल की विभिन्न विशेषताओं का निरूपण करते हुए जैन धर्म एवं मौर्य साम्राज्य के परस्पर सम्बन्धों का दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि जैन धर्म और चन्द्रगुप्त मौर्य के सम्बन्ध के सन्दर्भ में जैन धर्म में दो मत प्राप्त होते हैं। श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य का जैनधर्म से कोई सम्बन्ध नहीं जबकि दिगम्बर परम्परा की मान्यता है कि उसका पूरा जीवन जैन धर्म से प्रभावित था। इस संदर्भ में उन्होंने जैन ग्रन्थ तिलोयपण्णत्ति का उल्लेख किया जिसमें उन्होंने बताया कि कुछ स्थलों पर चन्द्रगुप्त का अपर नाम विशाखाचार्य भी प्राप्त होता है। आगे उन्होंने अशोक, कुणाल एवं संप्रति के जैनों से सम्बन्ध, जैन धर्म का उनके ऊपर प्रभाव तथा उसके प्रचार-प्रसार के लिए किये गये प्रयासों पर प्रकाश डाला।

इस अवसर पर जो विद्वज्जन उपस्थित थे उनमें मुख्य थे- प्रो० कमलेश कुमार जैन, प्रो० डी०पी० शर्मा, डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय, डॉ० रजनीकान्त त्रिपाठी, डॉ० श्रीनेत्र पाण्डेय, डॉ० ओम प्रकाश सिंह, डॉ० राहुल कुमार सिंह तथा राजेश चौबे इत्यादि। इनके अतिरिक्त शोध छात्र तथा छात्राएँ अधिक संख्या में उपस्थित थे।

२. 'श्रमण परम्परा के स्रोत एवं मूलभूत सिद्धान्त' विषयक १५ दिवसीय राष्ट्रीय कार्यशाला सम्पन्न

पार्श्वनाथ विद्यापीठ द्वारा 'श्रमण परम्परा के स्रोत एवं मूलभूत सिद्धान्त' विषयक एक १५ दिवसीय कार्यशाला का दिनांक २६ नवम्बर से १० दिसम्बर २०१५ तक आयोजन किया गया। इस कार्यशाला का उद्घाटन २६ नवम्बर २०१५ दिन बृहस्पतिवार को पार्श्वनाथ विद्यापीठ के सभागार में हुआ। उद्घाटन सत्र के मुख्य अतिथि सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के कुलपति प्रो० यदुनाथ

प्रसाद दूबे थे। उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता भारतीय संस्कृति एवं इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली के राष्ट्रीय प्रोफेसर एवं पार्श्वनाथ विद्यापीठ के पूर्व निदेशक प्रो० महेश्वरी प्रसाद ने किया। कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि डी०एल०डब्ल्यू०, वाराणसी के पूर्व महाप्रबन्धक श्री आर०के०जैन तथा सारस्वत अतिथि वाराणसी के प्रसिद्ध उद्योगपति एवं समाजसेवी श्री धनपतराज भंसाली थे।

मुख्य अतिथि पद से बोलते हुये प्रो० यदुनाथ प्रसाद दूबे ने कहा कि भारतीय संस्कृति श्रमण एवं ब्राह्मण संस्कृति का समन्वित रूप है। अतएव श्रमण संस्कृति को जाने बिना भारतीय संस्कृति को सम्पूर्ण रूप से नहीं जाना जा सकता। अध्यक्षता करते हुए प्रो० महेश्वरी प्रसाद ने कहा कि श्रमण एवं ब्राह्मण संस्कृति भारतीय संस्कृति की दो समानान्तर धाराएँ हैं, दोनों में वस्तुतः कोई विरोध नहीं है। विशिष्ट अतिथि श्री आर०के० जैन ने कहा कि श्रमण एवं ब्राह्मण दोनों परम्पराओं का उद्देश्य मानवता की सेवा के साथ-साथ जीवन के चरमलक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति ही है। सारस्वत अतिथि श्री धनपतराज भंसाली ने कहा कि जैन धर्म दर्शन द्वारा प्रतिपादित 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' सर्वोच्च सामाजिक मूल्य है जिसके आधार पर समतामूलक समाज की स्थापना सम्भव है।

इस अवसर पर कार्यशाला के निदेशक डॉ०श्री प्रकाश पाण्डेय ने कार्यशाला के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहा कि जैन एवं बौद्ध विद्या के विविध आयामों को हृदयंगम कर नवीन शोधार्थियों के लिए शोध के नये क्षेत्र उद्घाटित करना तथा व्यावहारिक स्तर पर समाज को सदाचरण की ओर प्रवृत्त करना ही इस कार्यशाला का उद्देश्य है। कार्यशाला संयोजक डॉ० श्रीनेत्र पाण्डेय ने कार्यशाला के पाठ्यक्रम एवं नियमों से प्रतिभागियों को अवगत कराया तथा कार्यक्रम का संचालन डॉ० राहुल कुमार सिंह द्वारा किया गया।

इस कार्यशाला में २७ नवम्बर से ८ दिसम्बर २०१५ तक ३३ विभिन्न विषयों पर कुल ३७ व्याख्यान हुए, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है-

१. भारतीय दर्शन एवं संस्कृति की विशेषताएँ : श्रमण परम्परा के विशेष सन्दर्भ में- यह व्याख्यान प्रो० अरविन्द कुमार राय, पूर्व विभागाध्यक्ष, दर्शन एवं धर्म विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा दिया गया। प्रो० राय ने बताया कि ब्राह्मण एवं श्रमण दोनों ही परम्पराएँ तप प्रधान हैं। तप भारतीय संस्कृति का प्राण है। जैन परम्परा में तप से ही निर्जरा होती है जबकि ब्राह्मण परम्परा में कामनाओं की पूर्ति के लिए भी तप का विधान है। प्रो० राय ने कहा कि ब्राह्मण

परम्परा में धर्म-प्रचारक का राग-द्वेष से मुक्त होना अनिवार्य है और श्रमण परम्परा में भी जिन या अर्हत् राग-द्वेष से मुक्त होते हैं। इसी प्रकार अवतारवाद भी दोनों परम्पराओं में विद्यमान है। अत: भारतीय संस्कृति को सम्यक् रूप से जानने के लिए श्रमण संस्कृति को जानना आवश्यक है।

२. जैन कर्म सिद्धान्त : यह व्याख्यान प्रो० कमलेश कुमार जैन, पूर्व अध्यक्ष, जैन-बौद्ध दर्शन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा दिया गया। प्रो० जैन ने आठ प्रकार की कर्म प्रकृतियों (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय) का उल्लेख करते हुए जीव से इनके बन्ध के कारण एवं इनसे मुक्ति के उपायों का विशद् विवेचन किया। इसी क्रम में प्रो० जैन ने द्विविध कर्मों (घाती एवं अघाती), द्विविध उपयोग (ज्ञानोपयोग एवं दर्शनोपयोग) तथा द्विविध जीवों भव्य एवं अभव्य का भी उल्लेख किया।

३. जैन सम्प्रदाय : यह व्याख्यान मानव सेवा संस्कृति शोध संस्थान, वाराणसी के निदेशक डॉ० झिनकू यादव द्वारा दिया गया। डॉ० यादव ने अपने व्याख्यान में दिगम्बर एवं श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के विभाजन की परिस्थिति एवं कारणों का उल्लेख करते हुए ८४ चैत्यवासी मुनियों, उनकी परम्परा एवं संस्कृति का सविस्तार विवेचन करते हुए ६३ शलाकापुरुषों (२४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव एवं ९ प्रतिवासुदेव) का भी उल्लेख किया। इसी क्रम में डॉ० यादव ने श्वेताम्बर एवं दिगम्बर सम्प्रदाय के स्थानकवासी, मूर्तिपूजक, तेरापंथी, तारणपंथी, बीसपंथी इत्यादि उपसम्प्रदायों का भी उल्लेख किया।

४. जैन सम्प्रदाय के विकास में राजकीय संरक्षण का योगदान : यह व्याख्यान प्रो० सीताराम दूबे, पूर्व विभागाध्यक्ष, प्रा०भा०इ०सं० एवं पुरातत्त्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा दिया गया। प्रो० दूबे ने विभिन्न साहित्यिक अभिलेखों एवं पुरातात्त्विक साक्ष्यों के आधार पर जैन धर्म को प्राप्त राजकीय संरक्षण का उल्लेख करते हुए बिम्बिसार, अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक के पुत्र सम्प्रति, खारवेल, रामगुप्त, गुजरात के चौलुक्य वंशीय शासक जयसिंह, इसके अतिरिक्त पूर्वमध्यकाल में प्रतिहार नरेश वत्सराज नागभट्ट द्वारा जैन धर्म के विकास में दिये गये योगदान का सविस्तार उल्लेख किया।

५. जैनागम साहित्य : यह व्याख्यान कार्यशाला के निदेशक एवं संस्थान के संयुक्त निदेशक डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय द्वारा दिया गया। डॉ० पाण्डेय ने बताया कि आगम अर्थप्रधान होते हैं जो अर्हतों द्वारा प्ररूपित हैं। इस सम्बन्ध में उन्होंने आचारांग समवायांग आदि अंगों तथा औपपातिक, राजप्रश्नीय, प्रज्ञापना आदि उपागों और

उनके विषय-वस्तु का सम्यक् विवेचन किया। डॉ० पाण्डेय ने आगमों के प्राचीन एवं वर्तमान वर्गीकरण का उल्लेख करते हुए अंग, उपांग, मूलसूत्र, छेदसूत्र, प्रकीर्णक और चूलिका सूत्रों का विशद् विवेचन किया। उन्होंने विभिन्न जैन सम्प्रदायों में मान्य आगमों की संख्या का सकारण विवचेन करते हुए आगमों की भाषा एवं उनकी चूर्णि, भाष्य एवं टीकाओं का भी उल्लेख किया।

६. अनेकान्तवाद : यह व्याख्यान प्रो० अशोक कुमार जैन, अध्यक्ष, जैन-बौद्ध दर्शन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा दिया गया। प्रो० जैन ने कहा कि अनेकान्तवाद जैन दर्शन का केन्द्रीयभूत सिद्धान्त है, जो वस्तु को अनन्तधर्मात्मक मानता है। उन्होंने अनेकान्तवाद का महत्त्व बताते हुए कहा कि अनेकान्तिक दृष्टि विरोधों का समन्वय है। इस दृष्टि से हम समाज में व्याप्त विभिन्न धर्मों की परस्पर असहिष्णुता को समाप्त कर सकते हैं।

७. गुणस्थान : यह व्याख्यान भी प्रो० अशोक कुमार जैन द्वारा ही दिया गया। प्रो० जैन ने आध्यात्मिक विकास में गुणस्थान के महत्त्व को रेखांकित करते हुए चौदह गुणस्थानों का सविस्तार उल्लेख करते हुए भारतीय दर्शन में प्राप्त इसके समतुल्य सिद्धान्तों तथा गुणस्थान सम्बन्धी विपुल साहित्य को भी रेखांकित किया।

८. बौद्ध सम्प्रदाय : यह व्याख्यान प्रो० प्रद्युम्न दूबे, अध्यक्ष, पालि एवं बौद्ध अध्ययन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा दिया गया। प्रो० दूबे ने बताया कि सर्वप्रथम संघ एक था, कालान्तर में स्थविरवाद एवं महासांघिक दो भेद हुए। पुनः स्थविर के १२ और कालान्तर में १८ भेद हुए। इसी प्रकार महासांघिक के दो भेद हुए- एकव्वोहारिक और गोकुलिक। इस प्रकार प्रो० दूबे ने अपने व्याख्यान में बौद्ध सम्प्रदाय के भेदों-प्रभेदों, उनके संस्थापकों तथा सम्बन्धित साहित्य का कालक्रमानुसार विशद् विवेचन किया।

९. जैन ज्ञानमीमांसा एवं प्रमाण विचार : यह व्याख्यान संस्थान के रिसर्च एसोसिएट डॉ० राहुल कुमार सिंह द्वारा दिया गया। डॉ० सिंह ने मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान रूप पंचज्ञान का विशद् विवेचन करते हुए ज्ञान को जीव का लक्षण बताया। उन्होंने सम्यक् ज्ञान को प्रमाण बताते हुए प्रमाण के प्रत्यक्ष और परोक्ष दो मुख्य भेदों का भी उल्लेख किया। पुनः प्रत्यक्ष के सांव्यवहारिक और पारमार्थिक दो भेदों का विवेचन करते हुए अवधि, मनःपर्यय और केवल को पारमार्थिक तथा मति एवं श्रुत को सांव्यवहारिक बताया। इसी क्रम में उन्होंने परोक्ष के अन्तर्गत स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान एवं आगम का भी उल्लेख किया।

१०. जैन परम्परा में दश धर्म : यह व्याख्यान कार्यशाला निदेशक डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय द्वारा दिया गया। डॉ० पाण्डेय ने अपने व्याख्यान में धर्म के लक्षणों की व्याख्या करते हुए जैन धर्म में प्रतिपादित दश धर्मों- क्षान्ति, मुक्ति, आर्जव, मार्दव, लाघव, सत्य, संयम, तप, त्याग और ब्रह्मचर्य आदि के लक्षण, स्वरूप एवं महत्त्व पर विशद् प्रकाश डाला।

११. जैन श्रमणाचार : यह व्याख्यान प्रो० कमलेश कुमार जैन द्वारा दिया गया। प्रो० जैन ने बताया कि जैन धर्म में श्रमणों के लिए जिन नियमों का विधान है, वे श्रमणाचार कहलाते हैं। इसके अन्तर्गत प्रो० जैन ने गुप्ति, समिति, अनुप्रेक्षा, परिषह-जय, धर्म एवं पञ्चमहाव्रतों इत्यादि का विस्तृत उल्लेख किया। इस क्रम में उन्होंने चार कषायों (क्रोध, मान, माया और लोभ) का विवेचन करते हुए जैन विचारणा में प्रतिपादित श्रमणाचार की, मनोवैज्ञानिक एवं नैतिक आधार पर प्रासंगिकता एवं उपादेयता को स्पष्ट किया।

१२. षड्द्रव्य, पञ्चास्तिकाय एवं तत्त्व विचार : यह व्याख्यान डॉ० राहुल कुमार सिंह द्वारा दिया गया। डॉ० सिंह ने अपने व्याख्यान में जैन दर्शन में प्रतिपादित जीव-अजीव द्रव्यों का विवेचन करते हुए अजीव द्रव्य के अन्तर्गत धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल द्रव्यों का सविस्तार उल्लेख किया। पुनः पञ्चविध अजीव द्रव्यों के द्विविध विभाजनों (रूपी-अरूपी एवं अस्तिकाय-अनस्तिकाय) का भी सविस्तार उल्लेख किया। डॉ० सिंह ने द्रव्य व्यवस्था के पश्चात् जीव को आस्रव और उसके फल बन्धन का ज्ञान आवश्यक बताते हुए जैन मतानुसार नौ द्रव्यों (जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, पुण्य, पाप, संवर, निर्जरा और मोक्ष) का भी विवेचन किया।

१३. नय एवं निक्षेप : यह व्याख्यान भी डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय द्वारा दिया गया। डॉ० पाण्डेय ने ज्ञाता या वक्ता के अभिप्राय को नय की संज्ञा देते हुए उसे प्रमाण द्वारा गृहीत वस्तु का आंशिक ज्ञान बताया जो वक्ता के कथन की विवक्षा पर आधारित है। उन्होंने प्रमाण एवं नय के अन्तर को स्पष्ट करते हुए नय के विविध भेद-प्रभेदों के साथ सात नयों का सोदाहरण विवेचन किया। पुनः उन्होंने निक्षेप को जैन भाषा दर्शन का अनूठा सिद्धान्त बताते हुए नाम, स्थापना, द्रव्य एवं भाव रूप से चतुर्विध निक्षेपों का विवेचन किया।

१४. स्याद्वाद एवं सप्तभंगीनय : यह व्याख्यान भी डॉ० राहुल कुमार सिंह द्वारा दिया गया। जैन विचारणा के अनेकान्तवाद सिद्धान्त की भाषायी अभिव्यक्ति रूप स्याद्वाद नामक सिद्धान्त का विवेचन करते हुए डॉ० सिंह ने इसके उद्भव, विकास

एवं व्यावहारिक उपयोगिता को उद्घाटित किया तथा सप्तभंगी के रूप में इसके वचन विन्यासों का सोदाहरण विवेचन किया।

१५. गौतम बुद्ध पूर्व बुद्ध परम्परा : यह व्याख्यान संस्थान के पूर्व निदेशक प्रो० महेश्वरी प्रसाद द्वारा दिया गया। प्रो० प्रसाद ने त्रिपिटक आदि बौद्ध साहित्य में वर्णित गौतम बुद्ध पूर्व बुद्ध परम्परा का उल्लेख करते हुए अट्ठकथाओं में वर्णित गौतम बुद्ध पूर्व २४ बुद्धों एवं उनके जीवनी पर प्रकाश डाला। इस सम्बन्ध में प्रो० प्रसाद ने चीनी यात्री फाह्यान एवं जैन ग्रन्थ ऋषिभासित का उल्लेख करते हुए संस्कृत एवं पालि साहित्य में प्राप्त अन्तिम छः बुद्धों (मानुषी बुद्ध) के नाम, जन्म स्थान और इनके वृक्ष का भी उल्लेख किया।

१६. बौद्ध परम्परा का ऐतिहासिक विकास : यह व्याख्यान प्रो० सीताराम दूबे पूर्व अध्यक्ष, प्रा०भा०इ०सं०एवं पुरातत्त्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा दिया गया। प्रो० दूबे ने गौतम बुद्ध पूर्व २४ बुद्धों का विवेचन करते हुए गौतम बुद्ध एवं उनके बाद की परम्परा का सम्यक् विवेचन किया। उन्होंने तीनों बौद्ध संगीतियों का उल्लेख करते हुए बौद्ध धर्म को प्राप्त राजकीय संरक्षण के विवेचन के क्रम में अशोक, कनिष्क और कुषाण के योगदान पर विशद् प्रकाश डाला। इस क्रम में प्रो० दूबे ने बौद्ध धर्म के सम्प्रदाय विभाजन एवं उसकी आचार्य परम्परा का सविस्तार उल्लेख किया।

१७. लेश्या सिद्धान्त : यह व्याख्यान भी डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय द्वारा दिया गया। डॉ० पाण्डेय ने लेश्या को मानव की मनोवृत्तियों के रूप में रंग के माध्यम से व्याख्यायित करते हुए उसके विविध स्तरों के रूप में कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कपोत लेश्या, पद्म लेश्या, तेजो लेश्या एवं शुक्ल लेश्या का सविस्तार सोदाहरण उल्लेख किया तथा मनोविज्ञान से उसके सम्बन्ध को दर्शाते हुए चेतना के विभिन्न स्तरों का विवेचन किया।

१८. जैन कोश-साहित्य : यह व्याख्यान संस्थान के पुस्तकालयाध्यक्ष डॉ० ओम प्रकाश सिंह द्वारा दिया गया। उन्होंने कोश की परिभाषा एवं महत्त्व को रेखांकित करते हुए 'शब्द कोश' एवं 'विषय कोश' रूप द्विविध कोशों का विवेचन किया। पुनः भाषा के आधार पर कोशों का वर्गीकरण करते हुए संस्कृत, प्राकृत एवं हिन्दी भाषा सहित अन्य भाषाओं के भी जैन कोशों के रचनाकार, रचनाकाल तथा विषयवस्तु का उल्लेख किया।

१९. बौद्ध न्याय : यह व्याख्यान प्रो० अभिमन्यु सिंह, पूर्व आचार्य, दर्शन एवं धर्म विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा दिया गया। प्रो० सिंह ने बौद्ध

प्रमाणशास्त्र को प्रत्यक्ष और अनुमान द्विविध बताया। इस सन्दर्भ में स्वलक्षण एवं सामान्य लक्षण का विवेचन करते हुए स्वलक्षण को प्रत्यक्ष का तथा सामान्य लक्षण को अनुमान का विषय बताया। उन्होंने स्वलक्षण को बौद्ध दर्शन का एकमात्र प्रमाण बताते हुए अनुमान को केवल व्यवहार के लिए आवश्यक बताया। इस क्रम में उन्होंने दिङ्नाग, धर्मकीर्ति इत्यादि दार्शनिकों के मतों का विस्तृत विवेचन किया।

२०. चार आर्यसत्य : यह व्याख्यान भी प्रो० अभिमन्यु सिंह द्वारा दिया गया। प्रो० सिंह ने दुःख से निवृत्ति को बौद्ध दर्शन का लक्ष्य बताते हुए कहा कि दुःख संसार का सामान्य लक्षण है। दुःख, दुःख का कारण, इसका निराकरण और इसके निराकरण का मार्ग, यही बौद्ध धर्म के चार आर्य सत्य हैं। इस क्रम में उन्होंने अष्टांगिक मार्ग (सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् आजीव, सम्यक् स्मृति एवं सम्यक् समाधि) का विशद् विवेचन किया।

२१. जैन कला एवं प्रतिमा विज्ञान : यह व्याख्यान प्रोफेसर मारुति नन्दन प्रसाद तिवारी, एमिरटस प्रोफेसर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा दिया गया। प्रो० तिवारी ने अपने व्याख्यान में तीर्थंकरों की ध्यान एवं कायोत्सर्ग मुद्रा के वैशिष्ट्य का उल्लेख करते हुए उनके लांछनों के पर्यावरणीय महत्त्व को भी रेखांकित किया। इस क्रम में उन्होंने खजुराहो के मन्दिर, दिलवाड़ा मन्दिर, चन्द्रप्रभ की कुषाणकालीन मूर्ति, देवगढ़ के ऋषभनाथ इत्यादि मूर्तियों के काल, स्थान एवं उनकी विशेषताओं का विशद् विवेचन किया।

२२. अपोहवाद : यह व्याख्यान डॉ० जयन्त उपाध्याय, दर्शन एवं धर्म विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी का था। डॉ० उपाध्याय ने बताया कि बौद्ध दर्शन के अनुसार किसी भी वस्तु के विषय में ज्ञान का कारण उस वस्तु का विशिष्ट धर्म है, न कि जाति। यह विशिष्ट धर्म ही 'अपोह' नाम से जाना जाता है। उन्होंने अपोह की व्युत्पत्ति, परिभाषा एवं महत्त्व को बताते हुए बौद्ध मतानुसार धर्म एवं जाति का भी विस्तृत उल्लेख किया।

२३. जैन-बौद्ध भिक्षुणी संघ : यह व्याख्यान, डॉ० अरुण प्रताप सिंह, अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास विभाग, श्री बजरंग स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिकन्दरपुर, बलिया द्वारा दिया गया। डॉ० सिंह ने जैन एवं बौद्ध दोनों ही परम्पराओं के चतुर्विध संघ (श्रमण, श्रमणी, श्रावक (उपासक) एवं श्राविका (उपासिका)) का विवेचन करते हुए साहित्यिक एवं अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर जैन एवं बौद्ध दोनों ही परम्पराओं के भिक्षुणियों के आचार, भिक्षु-भिक्षुणियों के पारस्परिक सम्बन्ध, उनकी सामाजिक स्थिति तथा दोनों परम्पराओं की भिक्षुणियों का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया।

२४. दक्षिण भारत में जैन धर्म : यह व्याख्यान डॉ० नवीन कुमार श्रीवास्तव, संयुक्त निदेशक, इन्टरनेशनल स्कूल फार जैन स्टडीज, नई दिल्ली द्वारा दिया गया। डॉ० श्रीवास्तव ने अपने व्याख्यान में ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर दक्षिण भारत में जैन धर्म के पलायन के कारणों का विवेचन करते हुए वहाँ जैन धर्म को प्राप्त राजकीय संरक्षण के क्रम में कदम्ब, गंग, पल्लव, चालुक्य एवं राष्ट्रकूट शासकों के योगदान पर प्रकाश डाला। उन्होंने अपने व्याख्यान में जैन धर्म के दक्षिण भारत में स्थित प्रमुख तीर्थस्थलों, दक्षिण भारत में जैन आचार्यों की परम्परा एवं जैन साहित्य का भी विस्तृत उल्लेख किया।

२५. जैन स्थापत्य एवं गुफाएँ : यह व्याख्यान काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रा०भा०इ०सं० एवं पुरातत्त्व विभाग के पूर्व आचार्य प्रो० हरिहर सिंह द्वारा दिया गया। प्रो० सिंह ने भारत में बनायी गयी 'संरचनात्मक एवं शैलीकृत' इमारतों की विशेषताओं एवं अन्तर का विवेचन करते हुए चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा पटना में निर्मित पत्थर के महलों, नागार्जुन एवं बराबर की सर्वप्राचीन गुफाओं, राजगृह में प्राप्त दो जैन गुफाओं-उदयगिरि तथा खण्डगिरि में खारवेल के परिजनों द्वारा निर्मित जैन गुफाओं, जूनागढ़ की शृंखलाबद्ध गुफाओं, बादामी, अहिरोली और एलोरा की जैन गुफाओं की विशेषताओं, निर्माताओं, निर्माण के उद्देश्यों एवं प्राप्त अभिलेखों पर पर्याप्त प्रकाश डाला।

२६. भारत के संरचनात्मक जैन मन्दिर - आबू के विशेष सन्दर्भ में : यह व्याख्यान भी प्रो० हरिहर सिंह द्वारा ही दिया गया। प्रो० सिंह ने जैन मन्दिरों की सामान्य विशेषताओं को विवेचित करते हुए संरचनात्मक जैन मन्दिरों के विवेचन के क्रम में आबू के जैन मन्दिरों के स्थापत्य और कला का विवेचन करते हुए गुजरात के प्रथम सोलंकी शासक भीमदेव प्रथम के मंत्री विमलशाह द्वारा निर्मित मन्दिर तथा सोलंकी नरेश भीमदेव द्वितीय के मंत्री तेजपाल द्वारा निर्मित मन्दिरों का उल्लेख करते हुए इन मन्दिरों को जैन मन्दिरों में प्राचीनतम एवं जैन धर्म की पूजन पद्धति के अनुकूल बताया।

२७. जैन परम्परा का इतिहास : यह व्याख्यान भी डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय द्वारा दिया गया। डॉ० पाण्डेय ने जैन परम्परा के इतिहास को बताते हुए ऋषभदेव से महावीर सहित २४ तीर्थंकरों की परम्परा एवं ६३ शलाकापुरुषों का सविस्तार उल्लेख किया। डॉ० पाण्डेय ने ऋषभ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ एवं महावीर की ऐतिहासिकता व जैन धर्म में संघ भेद के कारणों का उल्लेख करते हुए चतुर्विध संघ, उनके आचार तथा गणधर, गौतम, जम्बू स्वामी से प्रारम्भ कर भद्रबाहु, स्थूलभद्र

सहित वर्तमान में आचार्य महाश्रमण एवं आचार्य शिवमुनि जी तक की परम्परा पर प्रकाश डाला।

२८. पिटक साहित्य : यह व्याख्यान प्रो० बिमलेन्द्र कुमार, पूर्व अध्यक्ष, पालि एवं बौद्ध अध्ययन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा दिया गया। प्रो० कुमार ने पिटक की व्याख्या करते हुए कहा कि त्रिपिटक भगवान बुद्ध द्वारा बुद्धत्व प्राप्त करने के समय से महापरिनिर्वाण तक दिये गये प्रवचनों का संग्रह है। उन्होंने विनय पिटक, सुत्त पिटक और अभिधम्म पिटक के सभी विभागों, उनकी विषयवस्तु एवं रचनाकाल का विशद् विवेचन प्रस्तुत किया।

२९. आजीवक सम्प्रदाय : यह व्याख्यान प्रो० आनन्द मिश्र, दर्शन एवं धर्म विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा दिया गया। प्रो० मिश्र ने श्रमण परम्परा के अन्तर्गत आजीवक सम्प्रदाय के महत्त्व एवं उसकी विशेषताओं का वर्णन करते हुए इसके अन्तर्गत अजित केशकम्बल, मक्खली गोशाल, भिक्षु पूर्णकाश्यप, प्रक्रुद्ध कात्यायन, संजय बेलट्ठिपुत्त एवं निग्गंठनाथपुत्त के सिद्धान्तों एवं जीवन परिचय पर विस्तृत प्रकाश डाला।

३०. जैन चित्रकला : यह व्याख्यान ज्ञान प्रवाह, वाराणसी की निदेशिका प्रो० कमल गिरि का था। प्रो० गिरि ने जैन चित्रकला की सामान्य विशेषताओं को रेखांकित करते हुए सर्वप्राचीन जैन चित्रकला के रूप में एलोरा आदि गुफाओं की चित्रकला के साथ-साथ पटचित्र, भित्तिचित्र आदि का भी सविस्तार उल्लेख किया।

३१. जैन अभिलेख : यह व्याख्यान संस्थान के पूर्व निदेशक प्रोफेसर महेश्वरी प्रसाद जी द्वारा दिया गया। उन्होंने जैन अभिलेखों को जैन धर्म एवं संस्कृति की ऐतिहासिकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बताते हुए नागार्जुन एवं बराबर की गुफाओं से प्राप्त अभिलेखों के साथ-साथ खारवेल, माथुरी, गुप्तकाल, राजस्थान एवं मध्यकाल के जैन अभिलेखों का विस्तृत विवेचन किया।

३२. इतिहास के जैन स्रोत : यह व्याख्यान डॉ०उमेश चन्द्र सिंह, इतिहास विभाग, तिब्बती उच्च अध्ययन केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सारनाथ, वाराणसी द्वारा दिया गया। डॉ० सिंह ने अपने व्याख्यान में भारतीय एवं पाश्चात्य ऐतिहासिक परम्परा की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए दो प्रकार के जैन ऐतिहासिक स्रोतों- साहित्यिक एवं अभिलेखीय स्रोतों पर विशद् प्रकाश डाला।

३३. जैन धर्म-दर्शन में अहिंसा : यह व्याख्यान कार्यशाला संयोजक डॉ० श्रीनेत्र पाण्डेय द्वारा दिया गया। उन्होंने बाह्य एवं आन्तरिक व्यापार की दृष्टि से अहिंसा को व्याख्यायित करते हुए इसे मनोवैज्ञानिक तथ्य के रूप में प्रस्तुत किया। डॉ० पाण्डेय

ने अपने व्याख्यान में दश प्रकार के प्राणों का विवेचन करते हुए १०८ प्रकार की हिंसा एवं प्रश्नव्याकरण सूत्र में वर्णित अहिंसा के ६० नामों के आधार पर उसे विध्यात्मक प्रत्यय रूप सिद्ध किया। अहिंसा के विध्यात्मक पक्ष के रूप में उन्होंने दया और दान को परिभाषित करते हुए चार प्रकार की दया और दश प्रकार के दान का भी सविस्तार विवेचन किया।

उपरोक्त व्याख्यानों के बाद ९ दिसम्बर २०१५ को प्रतिभागियों द्वारा विभिन्न विषयों पर शोध-पत्र प्रस्तुत किये गये जिनके आधार पर श्री शिव प्रकाश यादव, इतिहास विभाग, का०हि०वि०वि०, वाराणसी को प्रथम, डॉ० भूपेन्द्र शुक्ल, दर्शन एवं धर्म विभाग, का०हि०वि०वि०, वाराणसी को द्वितीय तथा श्री हेमन्त सिंह, प्रा०भा०इ०संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, का०हि०वि०वि०, वाराणसी को तृतीय पुरस्कार प्रदान किया गया।

कार्यशाला का समापन १० दिसम्बर २०१५ को हुआ। समापन सत्र के मुख्य अतिथि डॉ० रत्नेश वर्मा, क्षेत्रीय सांस्कृतिक अधिकारी, उ०प्र० सरकार, वाराणसी क्षेत्र थे तथा अध्यक्षता प्रो० एस०पी० पाण्डेय, विभागाध्यक्ष, दर्शन एवं धर्म विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी ने किया। डॉ० रत्नेश वर्मा ने श्रमण एवं वैदिक संस्कृति के अन्तर्सम्बन्धों पर इतिहास की दृष्टि से प्रकाश डालते हुए दोनों संस्कृतियों को एक-दूसरे का पूरक बताया। उन्होंने कहा कि वर्तमान परिवेश में विविध परम्पराओं का पुनर्मूल्याकंन एवं तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है। प्रो० एस०पी० पाण्डेय ने कहा कि श्रमण परम्परा मूलतः आचार एवं ध्यान प्रधान है। जैन दर्शन के अनेकान्त, अपरिग्रह और अहिंसा का सिद्धान्त तथा बौद्धों का करुणा,मैत्री एवं अष्टांगिक मार्ग का सिद्धान्त भारतीय दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। प्रो० पाण्डेय ने कहा कि इस वैश्विक युग में हमें संकीर्णताओं से उठकर नयी सोच के साथ अध्ययन-अध्यापन करने की आवश्यकता है।

इस अवसर पर कार्यशाला के निदेशक डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय ने कहा कि कार्यशालाओं का उद्देश्य ज्ञान के क्षितिज को विस्तीर्ण करना होता है और मुझे पूर्ण विश्वास है कि कार्यशाला में श्रमण परम्परा के इतिहास, दर्शन, संस्कृति, कला और पुरातत्त्व जैसे विविध आयामों पर दिये गये व्याख्यान से प्रतिभागी अवश्य लाभान्वित हुए होंगे। कार्यशाला संयोजक डॉ० श्रीनेत्र पाण्डेय ने कार्यशाला में दिये गये व्याख्यानों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया।

इस कार्यशाला में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी एवं पं० दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर से कुल ३२ प्रतिभागी सम्मिलित हुए।

३. विदेशी विद्वान पार्श्वनाथ विद्यापीठ में

जैन धर्म एवं दर्शन की अध्येता रीटा क्लेयर वेल्ज, वेल्जियम और एल्मास नासी मेल्टम, टर्की का आगमन १७-१२-२०१५ को पार्श्वनाथ विद्यापीठ के प्रांगण में हुआ। अपने चार दिवसीय प्रवास के दौरान उन्होंने विभिन्न ग्रन्थों का अध्ययन किया तथा कुछ महत्त्वपूर्ण विषयों पर डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय, संयुक्त निदेशक, पार्श्वनाथ विद्यापीठ से वृहद् चर्चा की। साथ ही वाराणसी के प्रमुख जैन संस्थानों तथा मन्दिरों का भी भ्रमण किया। २१-१२-२०१५ को वे लोग वापस प्रस्थान कर गयीं।

*****

जैन जगत्

डॉ० तारा डागा को श्री गणेश ललवानी सम्मान

प्राकृत भारती अकादमी के प्राकृत विभाग की संयोजिका डॉ० तारा डागा को जैन साहित्य एवं प्राकृत-अपभ्रंश जैसी प्राच्य भाषाओं के अध्यापन एवं शोध कार्य में संलग्न रहने हेतु कलकत्ता विचार मंच द्वारा श्री गणेश ललवानी सम्मान प्रदान किया गया। यह सम्मान उन्हें दिनांक २० दिसम्बर २०१५ को कलकत्ता में ज्ञान मंत्र सभागार में आयोजित एक सादे समारोह में प्रदान किया गया। समारोह के मुख्य अतिथि थे महामहिम राज्यपाल, त्रिपुरा श्री तथागतराय। सम्मान के रूप में मेडल के साथ ३१०००/- रुपये की धनराशि भी प्रदान की गई।

*****

साभार प्राप्ति

पार्श्वनाथ विद्यापीठ को निम्न पुस्तकें साभार प्राप्त हुईं-

१. विश्व और जैन धर्म, लेखक-पं० हुकुमचन्द जैन शास्त्री, प्रका० संतोष प्रकाशन, राँची, ई० १९९०, मूल्य-१५/-

२. तत्त्वार्थसूत्र (प्रथम एवं द्वितीय भाग) हिन्दी एवं अंग्रेजी टीका, संकलन एवं सम्पादन-ब्र०एस०एल० जैन, प्रका०-मैत्री समूह, २०१४, मूल्य ३००/- (प्रत्येक भाग)

३. सामाजिक न्याय : अंबेडकर-विचार और आधुनिक सन्दर्भ- डॉ० सुधांशु शेखर, प्रका० दर्शना पब्लिकेशन, भागलपुर, २०१४, मूल्य-२५०/-

४. गाँधी-विमर्श, ले० डॉ० सुधांशु शेखर, प्रका० दर्शना पब्लिकेशन, भागलपुर, २०१५, मूल्य-१५०/-

५. धर्म परीक्षा (गुजराती विवेचना) भाग-१, २, विवेचन- आचार्य विजय मलय शेखर सूरि, प्रका० दिव्यदर्शन ट्रस्ट, अहमदाबाद, २०१५, मूल्य-२५०/-

६. श्री गुणस्थान क्रमारोह (गुजराती विवेचना) ले० आचार्य रत्नशेखर सूरि, विवेचन, मुनि यशरत्न विजय, प्रकाशक- जिनगुण आराधक ट्रस्ट, अहमदाबाद, २०१५, मूल्य ३५०/-

७. गुरुतत्त्व सिद्धि : (गुजराती विवेचना), विवेचन-सम्पादक-मुनि यशरत्न विजय, प्रकाशक- जिनगुण आराधक ट्रस्ट, अहमदाबाद, २०१५, मूल्य २५०/-

८. बृहद् सामायिक पाठ और श्रावक प्रतिक्रमण, संकलनकर्त्ता- गणिनी आर्यिका श्री शुभमति माता जी, प्रकाशक-सोऽहं फाउण्डेशन, २०१५ प्राप्ति स्थान- पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, रोड न० १६, जवाहर नगर प्लाट नं० ३०८, गोरेगाँव (वेस्ट), मुम्बई।

९. निशीथ- निर्युक्ति एवं भाष्य (हिन्दी अनुवाद) खण्ड १-४, अनु० साध्वी श्रुतयशा, सं०-डॉ० समणी कुसुमप्रज्ञा, प्रकाशक, जैन विश्वभारती, लाडनूँ, २०१५, मूल्य ३०००/- प्रति सेट।

जैन संस्कृति शोध संस्थान, इंदौर से आचार्य श्री सुनील सागर जी की टीका के साथ २०१४ में प्रकाशित निम्न तीन पुस्तकें प्राप्त हुईं-

१०. तत्त्वार्थसूत्र, सम्पादक- महेन्द्र कुमार जैन 'मनुज', मूल्य ७२/-

११. वयण-सारो, सम्पादक-पं०धनपाल म. हावले, मूल्य ३२/-

१२. णियप्पज्झाणसारो, सं०- डॉ० महेन्द्र कुमार जैन 'मनुज' पं० शिवचरण लाल जैन, मूल्य ३२/-

*****

श्रीमद्धनेश्वरसूरिविरचितं

सुरसुंदरीचरिअं

(नवम परिच्छेद)

पू. गणिवर्य उपाध्याय श्री विश्रुतयशविजयजीकृत
संस्कृतच्छाया, गुजराती और हिन्दी अनुवाद सहित
परामर्शदात्री
प.पू. साध्वीवर्या रत्नचूलाजी म.सा.

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी २०१५

Surasundarīcariaṁ : An Introduction

Jaina narrative literature is enormously rich. Particularly the narrative literature of Śvetāmbaras is a veritable storehouse of folk-tales, fairy-tales, beast-fables, parables, illustrative examples, apologues, allegories, legends, novels, funny stories and anecdotes. Apart from a large number of tales and parables and legends found in Jaina canons itself, the Jaina writers/authors have created new stories and legends of their own also. The versatile Jaina monk authors were very practical minded. They exploited the Indian people's inborn love for stories for the propagation of their dharma.

Surasundarīcariaṁ (last quarter of the 11th century AD) is a voluminous romantic epic composed in Prakrit by Śrīmad Sādhu Dhaneśvara Sūri, pupil of Śrī Jineśvara Sūri author of 'Kahāyaṇakośa.' Richer in content, it is an important work of Jaina narrative literature. The whole subject matter of the epic is divided into sixteen chapters (pariccheda). Each chapter contains a story interwoven with some another story which keep retained the interest of the readers.

In this issue we are publishing 9th Chapter of Surasundarīcariaṁ with its Gujarati and Sanskrit chāyā prepared by Parama Pujya Ganivarya Shri Vishrutayash Vijayaji Maharaj, the worthy disciple of Parama Pujya Acharya Pravara Shri Rajayash Surishvarji Maharaj.

We are very grateful to Acharyashri for entrusting this work to us for publication. Śramaṇa is presenting this beautiful story for its readers in part. We shall be publishing it in every alternate issue. We have already published chapter 1-8 and 10th of Surasundarīcariaṁ in our successive issues. Here follows the 9th chapter.

-The Editor

Summary of 9th Pariccheda of

Surasundaricariam

In 8th *Pariccheda*, we have seen that Vidyutprabha, after experiencing divine pleasure of Devaloka, took birth as Citravega, Candrārjuna Deva as Citragati and Sādhvī Vasumati as Priyaṅgumañjarī. Sādhu Kanakaratha of previous birth was born as Vidhuprabhadeva in next birth.

In 9th *Parichcheda* Citravaga asks to heavenly god Vidhuprabhadeva as to where did he go after giving the precious Gem (Maṇi) to him. Vidhuprabha says Citarvaga that he has got permission from Śaśiprabhadeva to send Citravega to Kushagranagar, situated in Bharata kṣetra of Jambūdvīpa where Dhanavāhana Muni is sitting in meditation. The last birth's enemy of Dhanavāhana has come to know about him and definitely he may harm him. Vidhuprabha instructs Citravega to go and rescue Dhanavāhana, where he would also joine him after taking permission of Indra. Vidhuprabha says that through clairvoyant, he had known that you are my friend Vidyutprabha who has got scared being chased by Nabhovāhana. Having thought he gave that gem to Citravega. When Citravega reached to Dhanavāhana Muni, he saw a Bhavanpatideva afflicting hardships on Muni. After Citravega opposed the deadly act of Bhavanapatideva, he ran away from there. Dhanavāhana Muni after cessation of all deluding *karmas* got omniscience. Many people and gods assembled to celebrate the *kevala-jñāna* of Kevalī Bhagavāna who preached *Dharma*, the real means of liberation (mokṣa).

On reply of a question that what caused indifference with Bhavanapti Deva, kevalī-bhagavāna told that it is the story of hisy previous birth. There was a city Champapuri in Videha kṣetra of Dhātakī Kahaṇḍa where king Padmarājā was living with his younger brother Samaraketu. Once, when the king was sitting in his assembly, there came Kapila, a heterodox and started refuting the concept of omniscience, soul, *mokṣa* etc. But he was defeated in debate by Samaraketu as Samaraketu extended appropriate logics in favor of

his statements. Kapila got angry with Samaraketu and attempted to kill him but ultimately got arrested. After sometime, he was released by Samaraketu on the condition that he would leave the country forever. Time elapsed and Padmarājā, after enthroning his own son got initiated in Śramaṇa Saṅgha with Samaraketu. While traveling, in search of water they came to Bhilapalli of Ratnapura where Kapila was already living. Kapila recognized both of them and decided to kill them by giving poison and after being unsuccessful in his attempt he tried to kill them by sword. But he was killed by his own sword by Deva. Both the Munis due to having good restraint and right-belief took birth in their next birth in Devaloka Vimāna and Kapila being died in fits of anger born in hellish being. The *jīva* of King Padmarājā took birth as Śaśiprabhadeva in Candrārjuna Vimāna and Samaraketu as Dhanavāhana of Kushagaranagar. Dhanavāhana after ruling for lacs of years enthroned Naravāhana and got himself initiated. The *jīva* of Kapila born as Uparudra Deva whom I met here. This is what you asked me.

O Citravega! I enquired about my next birth with Kevalī. He told me that after a long time you will be born as son of queen Kamalāvatī, wife of Amaraketu of Hastinapur kingdom. Whom you have given the auspicious gem; he will be your father. In a query by Deva, Citravega requests to save and help him in finding his wife who is kidnapped by Nabhovāhana. The Deva told him that she is in Gangavartanagar. Nabhovāhana deliberately wants to have relation with your wife. But when she knew the reality, she consumed poison to end her life. By thinking as dead, she was set to fire on pyre but Vidhuprabhadeva saved her. Then Deva consoled grieved Citravega, not to worry about her wife. This is all due to fruition of *karmas*. In last birth you had not been able to be detached from your wife, and that is why you are facing all these troubles. Deva made surprised Citravaega by presenting his wife alive. Deva added that when she was kept on pyre, I made her invisible and brought her here. So do not worry she is Kanakamālā your real wife. Deva appointed Citravega heads of Vidyādharas in southern range of Vaitāḍhya

Mountain. The Supratiṣṭha gave the gem given by Deva to Dhanadeva and requested Dhanadeva to visit him while returning to his village.

When Dhanadeva, while returning to Kushagaranagar his hometown, reached near Simha Guphā, he decided to go to Supratiṣṭha living in Palli. When he reached to Palli, he saw that the Palli was totally burnt and destroyed. The animals like cows, buffalos, and horses were completed roasted due to fire and from their blood spread over there a foul was emerging everywhere. The dogs, jackals were eating fleshes from thousands of dead bodies of warriors. Dhanadeva was surprised to see all that. Then Devaśarmā who got saved himself in the battle described the whole incident to Dhanadeva. He told that three days before a person came from Siddhapur and asked Pallipati that your father Sumati has sent me to inform you that the king Sugrīva is counting his last days due to being caught by dangerous disease tuberculosis. Surathu Kumāra who is an arrogant and characterless person is making harm to the people. Now you are the fittest one for Rājyalakṣmī. Kanakavatī has sent his army to kill you so you have to save yourself. At the same time the army came and occupied all the persons of Bhīla community. Supratiṣṭha was also there. Many people were killed in the battle and we got defeated. The army of enemy set the Palli on fire. In the battle, being wounded I lost my consciousness. Dhanadeva gave water to Devaśarmā and after hearing Navakāra Mantra Devaśarmā breathed his last. Since Supratiṣṭha was not seen anywhere, Dhanadeva thought may be Supratiṣṭha was killed. Dhanadeva returned to Hastinapur. His parents welcomed his wife Śrīkāntā. Śrīkāntā met there with her friend Queen Kamalāvatī. Kamalāvatī was very happy to meet her friend and told Śrīkāntā to visit her daily. Śrīkāntā returned to her home and there she enjoyed her life for several years. Once when she was in sleep with Dhanadeva, saw a dream that the moon is entering in her mouth and she got awakened. It was an auspicious dream as per Dhanaveda, and after appropriate time she gave birth to a son. Here ends the 9th chapter.

-Ganivarya Upadhyaya Vishrutyash Vijay

श्रीमद्धनेश्वरसूरिविरचितं

सुरसुंदरीचरिअं

नवम परिच्छेदः

गाहा :–

अह भणइ चित्तवेगो सुरवर! मह कहसु केण कज्जेण ।
तइया मणिं समप्पिय कत्थ गओ आसि तुरियगई? ।।१।।

संस्कृत छाया :–

अथ भणति चित्रवेगः सुरवर! मम कथय केन कार्येण ।
तदा मणिं समर्प्य कुत्र गतोऽसि त्वरित-गतिः ।।१।।

गुजराती अनुवाद :–

हवे चित्रवेग कहे छे, हे श्रेष्ठ देव! आप मने कहो के कया कार्य थी ते वखते मणीने आपीने तमे उतावळमां क्यां गया हता?

हिन्दी अनुवाद :–

अब चित्रवेग कहता है हे श्रेष्ठदेव! आप मुझे बताइए कि उस समय मणि देकर बड़ी जल्दी में आप कहाँ गए थे?

गाहा :–

तो भणइ सुरो सुंदर! निसुणसु एयंपि वज्जरिज्जंतं ।
अज्ज अहं आणत्तो ससिप्पहेणं तु देवेण ।।

संस्कृत छाया :–

ततो भणति सुरः सुन्दर! निःशृणु एतदपि कथ्यमानम् ।
अद्याऽहमाज्ञप्तः शशीप्रभेन तु देवेन ।।२।।

गुजराती अनुवाद :–

त्यारे ते देवे कह्युं! 'हे सुन्दर, ते वात ने कहेतो तमे मने सांभळो! हुं आजे शशिप्रभ नामना देव वड़े आदेश प्राप्त कराायो छुं।

हिन्दी अनुवाद :–

तब उस देव ने कहा, हे सुन्दर, तुम वह बात कहते हुए मुझे सुनो! मैं आज शशिप्रभ नामक देव से आदेश प्राप्त कराया हूँ।

गाहा :–

गच्छ विहुप्पह! खिप्पं जंबुद्दीवम्मि भरह-खेत्तम्मि ।
नयरे कुसग्ग-नामे धणवाहण-मुणिवर-समीवे ।।३।।

संस्कृत छाया :–

गच्छ विधुप्रभ! क्षिप्रं जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे।
नगरे कुशाग्र-नाम्नि धनवाहनमुनिवरसमीपे ।।३।।

गुजराती अनुवाद :–

हे विधुप्रभ! तुं जल्दीथी जंबुद्वीपमां भरतक्षेत्र ना कुशाग्र नामना नगरमां धनवाहन मुनि भगवंत पासे जा।

हिन्दी अनुवाद :–

हे विधुप्रभ! तूं शीघ्र ही जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र के कुशाग्र नगर में धनवाहन मुनि भगवंत के पास जा।

गाहा :–

सो पुव्व-वेरिएणं दिट्ठो झाणम्मि संठिओ तत्थ ।
तं दट्ठुं कुविओ सो काही अइगरुय उवसग्गं ।।४।।

संस्कृत छाया :–

स पूर्व-वैरिणा दृष्टो ध्याने संस्थितस्तत्र ।
तं दृष्ट्वा कुपितः स करिष्यत्यतिगुरुकोपसर्गम् ।।४।।

गुजराती अनुवाद :–

तेणे पूर्वभवना वैरीने जाण्यो छे के ते ध्यानमां बेठो छे। तेमने जोई ने गुस्से थयेलो ते खूब मोटा उपसर्ग करशे।

हिन्दी अनुवाद :–

उसने पूर्वभव के वैरी को जान लिया है कि वह ध्यान में बैठा है। उसे देखकर क्रोधित होकर वह बड़ा उपसर्ग करेगा।

गाहा :–

ता तस्स रक्खणट्ठा सिग्घं वच्चाहि तम्मि नयरम्मि ।
अहमवि इंदोणत्तिं समाणिउं आगमिस्सामि ।।५।।

संस्कृत छाया :–

तस्मात्तस्य रक्षणार्थे शीघ्रं व्रज तस्मिन्नगरे ।
अहमपीन्द्राज्ञप्तिं समानीयाऽऽगमिष्यामि ।।५।।

गुजराती अनुवाद :–

ते थी तेमनी रक्षा माटे तुं जल्दी थी ते नगर मां जा। हूँ पण इन्द्रनी आज्ञा लईने आवुं छुं।

हिन्दी अनुवाद :–

इसलिए उसकी रक्षा के लिए तूं शीघ्र ही उस नगर में जा मैं भी इन्द्र की आज्ञा लेकर आता हूँ।

गाहा :–

तत्तो तहत्ति भणिउं वेगेण समागओ अहं इहइं ।
ताव य दइया सहिओ पलायमाणो तुमं दिट्ठो ।।६।।

संस्कृत छाया :–

ततस्तथेति भणित्वा वेगेन समागतोऽहमिह ।
तावच्च दयितासहितः पलायमानस्त्वं दृष्टः ।।६।।

गुजराती अनुवाद :–

त्यारे तहत्ति कहीने हुं उतावळ थी आव्यो हतो। त्यां पत्नी संहित जतां तने जोयो।

हिन्दी अनुवाद :–

तब 'ऐसा ही होगा' कहकर मैं जल्दी से यहाँ आया था। वहाँ पत्नी सहित जाते तुम्हें देखा।

गाहा :–

ओहि-न्नाणेण मए नायं जह एस सो हु विज्जुपहो ।
मह मित्तो नहवाहण-भयाउरो वच्चए तुरियं ।।७।।

संस्कृत छाया :–

अवधिज्ञानेन मया ज्ञातं यथैष स हि विद्युत्प्रभः ।
मम मित्रं नभोवाहन-भयातुरो व्रजति त्वरितम् ।।७।।

गुजराती अनुवाद :–

अवधिज्ञान वड़े में जाण्युं के आ मारो विद्युत्प्रभ नामनो मित्र छे जे नभोवाहन ना भयथी उतावळे जई रह्यो छे।

हिन्दी अनुवाद :–

अवधिज्ञान से मुझे पता चला कि यह हमारा विद्युत्प्रभ नाम का मित्र है जो नभोवाहन के भय से जल्दी-जल्दी जा रहा है।

गाहा :–

नहवाहणोवि एसो पट्ठि-विलग्गो इमस्स एइत्ति ।
ताहे करेमि किंचिवि उवगारं पुव्व-मित्तस्स ।।८।।

संस्कृत छाया :–

नभोवाहनोऽपि एष पृष्ठ-विलग्नोऽस्य एति इति।
तदा करोमि किञ्चिदप्युपकारं पूर्वमित्रस्य ।।८।।

गुजराती अनुवाद :–

नभोवाहन पण आ अेनी पाछण पीछो करीने आवी रह्यो छे तो हुं मारा पूर्वभव ना मित्र नो कइंक उपकार थाय, तेवुं करुं।

हिन्दी अनुवाद :–

नभोवाहन भी इसका पीछा करता हुआ आ रहा है। इसलिए मुझे मेरे पूर्वभव के मित्र का कुछ उपकार हो जाय, ऐसा कार्य करना चाहिए।

गाहा :–

एवं विचिंतिऊणं तुम्ह समीवम्मि आगओ अहयं ।
तइया य मणी दिव्वो समप्पिओ जीव-रक्खट्ठा ।।९।।

संस्कृत छाया :–

एवं विचिन्त्य तव समीपेऽऽगतोऽहम् ।
तदा च मणिर्दिव्यः समर्पितो जीवरक्षाणार्थः ।।९।।

गुजराती अनुवाद :–

आम विचारी ने तारी नजीक आवी ने तारा रक्षण माटे तने में ते दिव्य मणि आप्यो हतो।

हिन्दी अनुवाद :–

ऐसा विचार कर तुम्हारे पास आकर तुम्हारी रक्षा के लिए मैंने वह दिव्य मणि तुम्हें दिया था।

गाहा :–

तत्तो य गओ तुरियं धणवाहण-मुणि-वरस्स पासम्मि ।
दिट्ठो य मए देवो उवसग्गं तस्स कुणमाणो ।।१०।।

संस्कृत छाया :–

ततश्च गतस्त्वरितं धनवाहनमुनिवरस्य पार्श्वे ।
दृष्टश्च मया देव उपसर्गं तस्य कुर्वन् ।।१०।।

गुजराती अनुवाद :–

त्यारपछी हुं तरत उतावळ थी धनवाहन मुनि पासे गयो त्यां में देवने ते मुनि पर उपसर्ग करतां जोयो।

हिन्दी अनुवाद :–

उसके पश्चात् मैं तुरन्त शीघ्रता से धनवाहन मुनि के पास गया। वहाँ मैंने देव द्वारा मुनि पर उपसर्ग करते हुए देखा।

गाहा :–

भणियं च मए रे! रे! तियसाहम! कत्थ वच्चसे इण्हिं ।
देविंद-वंदियाणं मुणीण एवं करेमाणो? ।।११।।

संस्कृत छाया :–

भणितं च मया रे! रे! त्रिदशाधम! कुत्र व्रजसि इदानीम् ।
देवेन्द्र-वन्दितानां मुनीना-मेवं कुर्वन्? ।।११।।

गुजराती अनुवाद :–

अने कह्युं, 'हे देवोमां अधम, हमणा ते देवेन्द्रोथी वंदित मुनिने (तकलीफ आपतां तुं) क्यां जईश?

हिन्दी अनुवाद :–

और कहा, 'हे देवों में अधम! अब उस देवेन्द्र द्वारा वंदित मुनि को तकलीफ पहुँचाता तूं कहाँ जाता है?

गाहा :–

उप्पायंतो पीडं मुणीण सम-सत्तु-मित्त-वग्गाणं ।
पाविट्ठ! कत्थ वच्चसि दिट्ठी-मग्गम्मि मह पडिओ?।।१२।।

संस्कृत छाया :–

उत्पादयन् पीडां मुनीनां सम-शत्रु-मित्रवर्गाणाम् ।
पापिष्ठ! कुत्र व्रजसि दृष्टि-मार्गे मम पतितः? ।।१२।।

गुजराती अनुवाद :–

आखा विश्वने मित्र माननारा, शत्रु अने मित्र पर समान दृष्टिवाळा मुनि ने पीड़ा करतां तुं मारा वड़े देखायो छे। हे पापिष्ठ! हवे तुं क्यां जईश?

हिन्दी अनुवाद :–

सम्पूर्ण विश्व को मित्र माननेवाले, शत्रु और मित्र पर समान दृष्टि रखने वाले मुनि को पीड़ा देते हुए तूं मेरे द्वारा देखा गया है। हे पापिष्ठ! अब तूं कहाँ जायेगा?

गाहा :–

एवं च मए भणिए भवणवई सो सुरो ससंभंतो ।
नट्ठो सहसा ताव य सुक्क-ज्झाणे पविट्ठस्स ।।१३।।
मुणिणो मोहावगमा उप्पन्नं केवलं वरं नाणं ।
केवलि-महिमा विहिया तओ मए परम-विणएणं ।।१४।।

संस्कृत छाया :–

एवं च मयि भणिते भवनपतिः स सुरः ससम्भ्रान्तः ।
नष्टः सहसा तावच्च शुक्लध्याने प्रविष्टस्य ।।१३।।
मुने-र्मोहापगमादुत्पन्नं केवलं वरं ज्ञानम् ।
केवलि-महिमा विहितस्ततो मया परम-विनयेन ।।१४।।

(युग्मम्)

गुजराती अनुवाद :–

आ प्रमाणे मे कह्युं त्यारे ते भवनपति देव गभराएलो तरत त्यां थी भाग्यो : एटली वारमां शुक्लध्यानमां प्रवेशेला ते मुनि ने मोहनीयकर्म ना नाश थी श्रेष्ठ एवुं केवलज्ञान उत्पन्न थयुं अने परम विनयपूर्वक में तेमनो केवलज्ञान महोत्सव कर्यो!

हिन्दी अनुवाद :–

इस प्रकार मेरे ऐसा कहे जाने पर वह भवनपति देव घबराया हुआ तुरन्त वहाँ से भागा। इतनी देर में शुक्लध्यान में प्रविष्ट उस मुनि को मोहनीय कर्म के नाश से श्रेष्ठ केवलज्ञान, उत्पन्न हुआ और विनयपूर्वक मैंने उनका केवलज्ञान महोत्सव किया।

गाहा :–

सोउं दुंदुहि-सद्दं देवा मणुया य आगया बहवे ।
कहिओ तेसिं धम्मो केवलिणा मोक्ख-सुह-हेऊ ।।१५।।

संस्कृत छाया :–

श्रुत्वा दुन्दुभि-शब्दं देवा मनुजाश्चाऽऽगता बहवः ।
कथितस्तेभ्यो धर्मः केवलिना मोक्षसुखहेतुः ।।१५।।

गुजराती अनुवाद :–

दुंदुभिनो नाद सांभळीने घणा देवो अने मनुष्यो आव्या त्यारे केवली भगवंते मोक्ष ना कारणवाळो अेवो धर्मनो उपदेश आप्यो।

हिन्दी अनुवाद :–

दुंदुभि की आवाज सुनकर अनेक देव और मनुष्य आ गए। तब केवली भगवंत ने मोक्ष के कारणरूप धर्म का उपदेश किया।

गाहा :–

पत्थावं लहिऊणं पुट्ठो सो केवली मए एवं ।
भयवं! किं अवरद्धं इमस्स देवस्स तुम्हेहिं ।।१६।।

संस्कृत छाया :–

प्रस्तावं लब्ध्वा पृष्टस्स केवली मया एवम् ।
भगवन्! किमपराद्धमस्य देवस्य युष्माभिः ।।१६।।

गुजराती अनुवाद :–

त्यारे अवसर मेळवी ने में केवली भगवँतो ने पूछ्यूं के आपे आ देवनो शुं अपराध कर्यो हतो।

हिन्दी अनुवाद :–

तब अवसर मिलने पर मैंने केवली भगवंत से पूछा के इस देव का आपने कौन सा अपराध किया था।

गाहा :–

जेणेसो पाव-मई जीविय-ववरोवणम्मि उज्जुत्तो? ।
तो भणइ मुणी निसुणसु जह वेरं आसि अन्न-भवे ।।१७।।

संस्कृत छाया :–

येनैष पापमतिर्जीवित-व्यपरोपणे उद्युक्तः? ।
ततो भणति मुनि र्निःशृणु यथा वैरमासीदन्यभवे ।।१७।।

गुजराती अनुवाद :–

के जेथी ते पापबुद्धि वालो आपनो जीव लेवा माटे आव्यो? त्यारे केवली मुनिए कह्युं के बीजा भवनो एनो वेर हतो ते सांभणो।

हिन्दी अनुवाद :–

कि जिससे पापबुद्धि वाला आपका जीव लेने के लिए आया। तब केवली मुनि ने कहा कि यह इसका पिछले जन्म का वैर था, वह सुनो।

गाहा :–

धायइ-संड-विदेहे चंपा नामेण आसि वर-नयरी ।
तीए पउमो राया जुवराया समरकेउत्ति ।।१८।।

संस्कृत छाया :–

धातकी खण्ड-विदेहे चम्पा नाम्नाऽऽसीत् वरनगरी ।
तस्यां पद्मो राजा युवराजः समरकेतुरिति ।।१८।।

गुजराती अनुवाद :–

धातकी खंड ना विदेहक्षेत्र मां चम्पापुरी नामनी नगरीमां पद्म राजा तथा तेनो नानोभाई समरकेतु नामनो युवराज हतो।

हिन्दी अनुवाद :–

धातकी खंड के विदेह क्षेत्र में चम्पापुरी नामक नगरी के पद्म राजा तथा उसका छोटा भाई समरकेतु नामक एक युवराज था।

गाहा :–

जिण-वयण-भावियप्पा सहोयरा दोवि नेह-संजुत्ता ।
पालेंति देस-विरइं रज्ज-धुरं तह य नीईए ।।१९।।

संस्कृत छाया :–

जिनवचन-भावितात्मानौ सहोदरौ द्वावपि स्नेहसंयुक्तौ ।
पालयतो देशविरतिं राज्यधुरं तथा च नीत्या ।।१९।।

गुजराती अनुवाद :–

जिनवचन थी भावित ते बंने भाइओ परस्पर प्रेम वाळा : देशविरति पाळता राज्यनी धूराने पण नीतिपूर्वक पाळता हता।

हिन्दी अनुवाद :–

जिनवचन से भावित उन दोनों भाइयों में परस्पर प्रेम था। वे देशविरति प्राप्त कर राज्य का प्रशासन भी नीतिपूर्वक करते थे।

गाहा :–

अत्थाणमुवगयाणं नाहिय-वाई समागओ कविलो ।
वज्जरइ नत्थि जीवो न य सव्वन्नू न नेव्वाणं ।।२०।।

संस्कृत छाया :–

आस्थानमुपगतयो-र्नास्तिकवादी समागतः कपिलः ।
कथयति नास्ति जीवो न च सर्वज्ञो न निर्वाणम् ।।२०।।

गुजराती अनुवाद :–

एक वखत सभामां बंने बेठा हता त्यारे कपिल नामनो नास्तिक आव्यो जेणे जीव, सर्वज्ञ अने मोक्षनो निषेध कर्यो हतो।

हिन्दी अनुवाद :–

एक बार सभा में दोनों बैठे हुए थे, तभी कपिल नाम का एक नास्तिक वहाँ आया जो जीव, सर्वज्ञ और मोक्ष का निषेध करता था।

गाहा :–

जिण-मय-सत्थत्थ-वियाणएण जुवराइणा जिओ वाए ।
दिट्ठंत-हेउ-कारण-नाणाविह जुत्ति-निवहेण ।।२१।।

संस्कृत छाया :–

जिनमत-शास्त्रार्थ-विज्ञायकेन युवराजेन जितो वादे ।
दृष्टान्त-हेतु-कारण-नानाविध-युक्तिनिवहेन ।।२१।।

गुजराती अनुवाद :–

जिनमत अने शास्त्रना रहस्य ने जाणनारा युवराजे दृष्टान्त, हेतु, कारण अने बीजी विविध युक्तिओं वड़े वादमां कपिलने जीती लीधो।

हिन्दी अनुवाद :–

जिन मत और शास्त्र के रहस्य को जानने वाले युवराज ने दृष्टान्त, हेतु, कारण और दूसरी विभिन्न युक्तियों से वाद में कपिल को जीत लिया।

गाहा :–

जुवरन्नो पडिवयणं जाहे न चएइ किंपि सो दाउं ।
ताहे मंति-महत्तम-सामंताईहिं उवहसिओ ।।२२।।

संस्कृत छाया :–

युवराजस्य प्रतिवचनं यदा न शक्नोति किमपि स दातुम् ।
तदा मन्त्रिमहत्तम-सामन्तादिभिरूपहसितः ।।२२।।

गुजराती अनुवाद :–

ज्यारे कपिल युवराजने कोईपण जवाब आपी न शक्यो त्यारे मंत्री सामन्त विगेरे ए तेनो उपहास कर्यो।

हिन्दी अनुवाद :–

जब कपिल युवराज को कोई जवाब नहीं दे सका तो मंत्री, सामन्त वगैरह ने उसका उपहास किया।

गाहा :–

जाओ य विलक्खो सो दढं पउट्ठो य समरकेउस्स ।
कह णु महा-यण-मज्झे एएणं धरिसिओ अहयं? ।।२३।।

संस्कृत छाया :–

जातश्च विलक्षः स दृढप्रदुष्टश्च समरकेतवे ।
कथन्नु महाजनमध्ये एतेन धर्षितोऽहम् ।।२३।।

गुजराती अनुवाद :–

ते अत्यंत विलखो पड्यो अने समरकेतु प्रत्ये द्वेष धारवा लाग्यो के ते महाजन नी वच्चे मने केम नीचे पाड्यो।

हिन्दी अनुवाद :–

वह अत्यन्त क्षुब्ध हो गया और समरकेतु के प्रति द्वेष रखने लगा कि उसने महाजनों के बीच में हमें नीचा क्यों दिखाया।

गाहा :–

एवं विचिंतयंतो अइगुरु-रोसेण धमधमंतो सो ।
अत्थाण-मंडवाओ नीहरिओ चिंतए एवं ।।२४।।

संस्कृत छाया :–

एवं विचिन्तयन्नतिगुरुरोषेण धमधमन् सः ।
आस्थानमण्डपाद् निःसृतश्चिन्तयत्येवम् ।।२४।।

गुजराती अनुवाद :–

आ प्रमाणे चिंतन करतो अत्यन्त गुस्साथी धमधमतो ते सभामां थी नीकल्या अने आ प्रमाणे विचारवा लाग्यो।

हिन्दी अनुवाद :–

इस प्रकार विचार करता हुआ अत्यन्त क्रोध में वह धमधमाता हुआ सभा से बाहर निकल गया और विचार करने लगा।

गाहा :–

न य केणइ पुव्वमहं पराइओ वाइणा इहं लोए ।
पावेण इमेण पुणो सभाए मज्झम्मि कह विजिओ? ।।२५।।

संस्कृत छाया :–

न च केनापि पूर्वमहं पराजितो वादिनेह लोके ।
पापेनाऽनेन पुनः सभायां मध्ये कथं विजितः? ।।२५।।

गुजराती अनुवाद :–

पहेलां क्यारे पण हुं कोई पण वादी वड़े पराजित नथी थयो, ज्यारे आ पापीओ मने सभामां केवी रीते हरावी दीधो?

हिन्दी अनुवाद :–

इसके पहले कभी भी मैं किसी वादी से पराजित नहीं हुआ था जबकि इस पापी ने भरी सभा में किस प्रकार मुझे हरा दिया?

गाहा :–

ता रयणीए भवणे इमस्स गंतूण गहिय-करवालो ।
छिंदामि उत्तिमंगं जेण मणं निव्वुइं लहइ ।।२६।।

संस्कृत छाया :–

तस्माद्रजन्यां भवनेऽस्य गत्वा गृहीतकरवालः ।
छिनद्म्युत्तमाङ्गं येन मनो निर्वृत्तिं लभते ।।२६।।

गुजराती अनुवाद :–

तेथी रात ना तलवार लईने आना महेलमां जईने अेनु मस्तक छेदि नाखिश तो मने शांति मळसे ।

हिन्दी अनुवाद :–

इसलिए रात को तलवार लेकर इसके महल में जाकर इसका सिर काट लूंगा, तभी शान्ति मिलेगी।

गाहा :–

रोद्दज्झाणोवगओ एवं सो चिंतिऊण रयणीए ।
गहियाउहो पविट्ठो वास-हरे समरकेउस्स ।।२७।।

संस्कृत छाया :–

रौद्रध्यानोपगत एवं स चिन्तयित्वा रजन्याम् ।
गृहीतायुधःप्रविष्टो वासगृहे समरकेतोः ।।२७।।

गुजराती अनुवाद :–

रौद्रध्यानधी वश थयेलो आ प्रमाणे चिंतन करीने रात्रिमां शस्त्र लईने समरकेतु ना महेलमां प्रवेश्यो।

हिन्दी अनुवाद :–

रौद्र ध्यान के वश में हुआ वह इस प्रकार चिंतन करता हुआ शस्त्र लेकर समरकेतु के महल में प्रवेश किया।

गाहा :–

वच्चो-हर भित्तीए पच्छन्नो अच्छए पलीणो सो ।
काऊण गोस-किच्चं समागओ तत्थ जुव-राया ।।२८।।

संस्कृत छाया :–

वर्चोगृहभित्यां प्रच्छन्नोऽऽस्ते प्रलीनः सः ।
कृत्वा गोस (प्रातः) कृत्यं समागतस्तत्र युवराजः ।।२८।।

गुजराती अनुवाद :–

ठल्लानी जगामां छूपीरीते दिवालनी आडमां ते छुपाई गयो, त्यां युवराज आव्यो।

हिन्दी अनुवाद :–

शौचालय की जगह में वह दीवाल की आड़ में छुप गया। वहाँ युवराज आये।

गाहा :–

दीवय-वग्ग-करेहिं नरेहिं उज्जोइएण मग्गेणं ।
वच्चो-हर-गमणिच्छा अह जाया राय-उत्तस्स ।।२९।।

संस्कृत छाया :–

दीपकवर्ग-करै-नरै-रूद्योतितेन मार्गेण ।
वर्चोगृह-गमनेच्छाऽथ जाता राजपुत्रस्य ।।२९।।

गुजराती अनुवाद :–

दीपकों द्वारा प्रकाशित थयेला मार्ग वड़े युवराज ठल्ले जवानी इच्छा वाळा थया हता ।

हिन्दी अनुवाद :–

चिरागदान द्वारा प्रकाशित रास्ते से युवराज को शौच जाने की इच्छा हुई।

गाहा :–

पुरिसेहिं तत्थ दिट्ठो वच्चो-हर-संठिओ स दुट्ठ-मई ।
आयड्ढंतो खग्गं गहिओ बद्धो य सहसत्ति ।।३०।।

संस्कृत छाया :–

पुरुषैस्तत्र दृष्टो वर्चोगृह-संस्थितः स दुष्टमतिः ।
आकर्षन् खड्गं गृहीतो बद्धश्च सहसेति ।।३०।।

गुजराती अनुवाद :–

त्यां पुरुषों ते भूमिमां दुष्ट मतिवाला कपिल ने जोयो जेना हाथमां तलवार हती, तेथी तरतज तेने पकड़ी ने बांधी दीधो।

हिन्दी अनुवाद :–

वहाँ लोगों ने उस जगह दुष्टमतिवाले कपिल को देखा जिसके हाथ में तलवार थी। तभी तुरन्त उसे पकड़ कर बांध दिया।

गाहा :–

जुवरन्ना नाओ सो नाहिय-वाई स एस कविलोत्ति ।
नूणं वायम्मि जिओ मज्झ वहट्ठा इह पविट्ठो ।।३१।।

संस्कृत छाया :–

युवराजेन ज्ञातः स नास्तिकवादी स एष कपिल इति ।
नूनं वादे जीतो मम वधार्थमिह प्रविष्टः ।।३१।।

गुजराती अनुवाद :–

युवराजे कह्युं के ते नास्तिकवादी कपिल तेज आ छे। जेने में वाद मां जीत्यो हतो ते मने मारवा माटे अहीं आवेल छे।

हिन्दी अनुवाद :–

युवराज ने कहा कि वह नास्तिकवादी कपिल यही है जिसको मैंने वाद में जीत लिया था। वह मुझे मारने के लिए यहाँ आया है।

गाहा :–

दट्ठूण दीण-वयणं वेवंत-सरीरयं तयं कविलं ।
परिचत्त-जीवियासं जाया करुणा कुमारस्स ।।३२।।

संस्कृत छाया :–

दृष्ट्वा दीनवदनं वेपमान शरीरं तकं कपिलम् ।
परित्यक्त-जीविताशं जाता करुणा कुमारस्य ।।३२।।

गुजराती अनुवाद :–

दीन मोढावाळा कांपता शरीरवाला जीववानी आशा छोड़ी दीधी छे तेवा कपिल ने जोईने युवराज ने करुणा उत्पन्न थई।

हिन्दी अनुवाद :–

लटके हुए मुख और-कांपते शरीर वाला जिसने जीने की आशा छोड़ दी है, उस कपिल को देखकर युवराज के मन में करुणा उत्पन्न हो गयी।

गाहा :–

भणियं कुमरेण तओ जीवंतो ताव इण्हि मुक्को सि ।
मोत्तूण मज्झ देसं ठाएयव्वं तुमे पाव! ।।३३।।

संस्कृत छाया :–

भणितं कुमारेण ततो जीवन् तावदिदानीं मुक्तोऽसि ।
मुक्त्वा मम देशं स्थातव्यं त्वया पाप! ।।३३।।

गुजराती अनुवाद :–

त्यारे कुमारे कहयुं, 'हे पापी हमणा तने जीवतो छोडूं छुं तारे मारा देशने छोड़ीने जवुं।

हिन्दी अनुवाद :–

तब कुमार ने कहा, हे पापी ! अभी मैं तुम्हें जीवित छोड़ रहा हूँ। तू हमारे देश को छोड़कर जा।

गाहा :–

इय भणिओ सो नट्ठो गंतूणं ताहि दूर-देसम्मि ।
भिल्ल-जणाइण्णाए अवट्ठिओ भिल्ल-पल्लीए ।।३४।।

संस्कृत छाया :–

इति भणितः स नष्टो गत्वा तदा दूरदेशे ।
भिल्लजनाकीर्णायामवस्थिता भिल्लपल्लयाम्।।३४।।

गुजराती अनुवाद :–

आ प्रमाणे कहवायेलो कपिल भागीने दूर देश मां भील लोकोथी व्याप्त भीलपल्ली मां गयो अने रह्यो।

हिन्दी अनुवाद :–

ऐसा कहे जाने पर कपिल भाग कर दूरदेश में भील लोगों से व्याप्त भीलपल्ली में गया और वहीं रहने लगा।

गाहा :–

अह अन्नया य पउमो पुत्तं अहिसिंचिऊण रज्जम्मि ।
जुवराइणा समेओ पव्वइओ गुरु-समीवम्मि ।।३५।।

संस्कृत छाया :–

अथान्यदा च पद्मः पुत्रमभिसिञ्च्य राज्ये।
युवराजेन समेतः प्रव्रजितो गुरु-समीपे।।३५।।

गुजराती अनुवाद :–

हवे एक वखत पद्मराजाये पोताना पुत्रने राजगादी पर बेसाड़ी ने युवराज साथे गुरुपासे दीक्षा लीधी।

हिन्दी अनुवाद :–

तब एक समय पद्म राजा ने अपने पुत्र को राजगद्दी सौंपकर युवराज के साथ गुरु के पास दीक्षा ले ली।

गाहा :–

दोन्निवि गुरुणा सहिया विहरंता बहुविहेसु देसेसु।
सत्थेण समं चलिया रयणपुरं नाम वर-नयरं।।३६।।

संस्कृत छाया :–

द्वावपि गुरुणा सहितौ विहरन्तौ बहुविधेषु देशेषु।
सार्थेन समं चलितौ रत्नपुरं नाम वरनगरम्।।३६।।

गुजराती अनुवाद :–

बंने जणा गुरुजी साथे विहार करता विविध प्रदेशों मां विचरता सार्थनी साथे रत्नपुर नगरमां पधार्या।

हिन्दी अनुवाद :–

दोनों लोग गुरु के साथ विविध प्रदेशों में विहार करते हुए सार्थ सहित रत्नपुर नगर में आये।

गाहा :–

सत्थाओ कहवि भट्ठा दोन्निवि अडवीए मोहिया मुणिणो।
संपत्ता पल्लीए पाणय-अट्ठा पविट्ठा ते।।३७।।

संस्कृत छाया :–

सार्थात् कथमपि भ्रष्टौ द्वावप्यटव्यां मोहितौ मुनी।
सम्प्राप्तौ पल्लयां पानकार्थं प्रविष्टौ तौ।।३७।।

गुजराती अनुवाद :–

सार्थथी छूटा पडेला भूला पडेला ते बंने महात्माओ भीलपल्ली मां पाणी वहोरवा प्रवेश्या।

हिन्दी अनुवाद :–

अपने सार्थ से छूटे हुए अलग पड़े दोनों महात्मा भील पल्ली में पानी के लिए प्रवेश किए।

गाहा :–

दिट्ठा य परियडंता कविलेणं कहवि पच्चभिन्नाया ।
कुद्धो य दढं एसो दट्ठूण मुणिं समरकेउं ।।३८।।

संस्कृत छाया :–

दृष्टौ च पर्यटन्तौ कपिलेन कथमपि प्रत्यभिज्ञातौ ।
क्रुद्धश्च दृढमेष दृष्ट्वा मुनिं समरकेतुम् ।।३८।।

गुजराती अनुवाद :–

कपिले ते बंनेने फरता ओळख्या अने समरकेतु मुनिने जोई ते खूबज क्रोधित थया।

हिन्दी अनुवाद :–

वहाँ कपिल ने दोनों को पहचान लिया और समरकेतु मुनि को देखकर बहुत क्रोधित हुआ।

गाहा :–

चिंतेइ ताहे कविलो इमेण वाएवि निज्जिओ अहयं ।
निव्विसओ आणत्तो तइया य इमेण पावेण ।।३९।।

संस्कृत छाया :–

चिन्तयति तदा कपिलोऽनेन वादेऽपि निर्जितोऽहम् ।
निर्विषय आज्ञप्तस्तदा चानेन पापेन ।।३९।।

गुजराती अनुवाद :–

ते वखते कपिले विचार्यु के तेना वड़े हुं वादमां जीतायो अने ते पापीओ मने देश निकालनी आज्ञा करी।

हिन्दी अनुवाद :–

उस समय कपिल ने विचार किया कि इनसे मैं वाद में जीता गया और उस पापी ने मुझे देश निकाला की आज्ञा दी।

गाहा :–

ता कवडेणं केणवि वइरस्संतं करेमि इण्हिंपि ।
इय चिंतिऊण वंदइ ते मुणिणो परम-विणएण ।।४०।।

संस्कृत छाया :–

तावत् कपटेन केनापि वैरस्यान्तं करोमीदानीमपि ।
इति चिन्तयित्वा वन्दते तौ मुनी परम विनयेन ।।४०।।

गुजराती अनुवाद :–

तेथी कोईपण रीते कपट करीने पण हुं वेरनो बदलो लऊं अेम विचारी ने परम विनयपूर्वक तेणे बंने मुनि ने वन्दन कर्युं।

हिन्दी अनुवाद :–

इसलिए किसी भी प्रकार से छल कर मैं अपनी दुश्मनी का बदला लूंगा। ऐसा विचार कर उसने दोनों मुनियों की विनयपूर्वक वन्दना की।

गाहा :–

नीया य निजे गेहे विस-मीसं भत्त-पाणयं दिन्नं ।
भणिया य विणय-पुव्वं भयवं! एत्थेव भुंजेह ।।४१।।

संस्कृत छाया :–

नीतौ च निजेगेहे विषमिश्रं भक्तपानकं दत्तम् ।
भणितौ च विनय-पूर्वं भगवन्(तौ?) अत्रैव भुञ्जेथाम् ।।४१।।
अत्रैव

गुजराती अनुवाद :–

अने पोताना घर मां लई जईने झेरवाळा अन्न पान वहोराव्या अने विनय पूर्वक कह्युं, 'भगवंत तमे अहिंआ वापरो।

हिन्दी अनुवाद :–

और अपने घर ले जाकर जहर युक्त अन्नपान कराया और विनयपूर्वक कहा कि 'भगवन्' आप यहीं भोजन ग्रहण करें।

गाहा :–

अद्धाण-गमण-खिन्ना निव्वियणे एत्थ एग-देसम्मि ।
भुंजिय वीसमिउं तो पभाय-काले वएज्जाह ।।४२।।

संस्कृत छाया :–

अध्वानगमनखिन्नौ निर्विजनेऽत्रैकदेशे ।
भुङ्क्त्वा विश्रम्य ततः प्रभात-काले व्रजतम् ।।४२।।

गुजराती अनुवाद :–

मार्गना विहारना श्रमथी थाकेला बंने जणा अेकान्त स्थान मां वापरीने विश्राम करी सवारे पधारो।

हिन्दी अनुवाद :–

उसने कहा कि मार्ग में विहार से आप दोनों (थक गए होंगे इसलिए) यहीं एकान्त स्थान में खा कर विश्राम करके सुबह चले जाइएगा।

गाहा :–

एवं भणिया तेणं सुह-भावा वीसमित्तु खणमेगं ।
सज्झायं काऊणं पारद्धा भोयणं काऊं ।।४३।।

संस्कृत छाया :–

एवं भणितौ तेन शुभभावौ विश्रम्य क्षणमेकम् ।
स्वाध्यायं कृत्वा प्रारब्धौ भोजनं कर्तुम् ।।४३।।

गुजराती अनुवाद :–

आवुं कहवायेला शुभभाववाळा ते बंने मुनिओ थोड़ो आराम करीने स्वाध्याय करीने आहार वापरवानुं शुरू कर्युं।

हिन्दी अनुवाद :–

ऐसा कहे जाने पर शुभभाव वाले दोनों मुनि थोड़ा आराम कर, स्वाध्याय करने के बाद आहार लेना प्रारम्भ किया।

गाहा :–

संनिहिय-देवयाए मुणि-अणुकंपाए तयं विसं हरियं ।
भोत्तूण तओ दोन्निवि सज्झायं काउमारद्धा ।।४४।।

संस्कृत छाया :–

सन्निहित-देवतया मुन्यनुकम्पया तं विषं हृतम् ।
भुक्त्वा ततो द्वावपि स्वाध्यायं कर्तुमारब्धौ ।।४४।।

गुजराती अनुवाद :–

नजीकमा रहेला देवता वड़े ते मुनिओ ऊपर भक्तिथी झेर दूर करायुं अने ते बंने मुनिओ वापरीने स्वाध्याय करवा लाग्या।

हिन्दी अनुवाद :–

पास में रहनेवाले देवता ने उन मुनियों पर भक्ति के कारण जहर का प्रभाव दूर कर दिया और तब दोनों मुनियों ने आहार लेकर स्वाध्याय करना प्रारम्भ किया।

गाहा :–

चिंतेइ तओ कविलो हंत! विसेणं नं किं मया एए ।
नूणं मंत-बलेणं अवहरिया होज्ज विस-सत्ती ।।४५।।

संस्कृत छाया :–

चिन्तयति ततः कपिलो हन्त! विषेण न किम् मृतावेतौ? ।
नूनं मन्त्रबलेनापहृता भवेद् विषशक्तिः ।।४५।।

गुजराती अनुवाद :–

आ बाजू कपिल विचारे छे के झेरथी पण आ बंने ना मर्या खरेखर मंत्रना बळथी झेर दूर कराव्युं हशे।

हिन्दी अनुवाद :–

दूसरी तरफ कपिल विचार करता है कि जहर से भी ये दोनों नहीं मरे। जरूर मन्त्र के बल से जहर का प्रभाव दूर कराए होंगे।

गाहा :–

ता रयणीइ अवस्सं मारेयव्वो मए इमो मुंडो ।
जीवंतम्मि इयम्मी नत्थि ममं जेण संतोसो ।।४६।।

संस्कृत छाया :–

तावत् रजन्यामवश्यं मारितव्यो मयाऽयं मुण्डः ।
जीवत्यस्मिन् नास्ति मम येन संतोषः ।।४६।।

गुजराती अनुवाद :–

तेथी रात्रे जरूर मारे आ टकलाने मारवो जोइस केमके ते जीवतो हशे त्यां सुधी मने संतोष नहि थाय।

हिन्दी अनुवाद :–

इसलिए रात में मुझे जरूर मुण्डितों को मार देना चाहिए क्योंकि ये जबतक जीवित रहेंगे तबतक मुझे संतोष नहीं होगा।

गाहा :–

पत्ताए रयणीए सज्झायं कट्टु साहुणो सुत्ता।
कविलोवि अद्ध-रत्ते समागओ साहु-वहणट्ठा ।।४७।।

संस्कृत छाया :–

प्राप्तायां रजन्यां स्वाध्यायं कृत्वा साधू-सुप्तौ।
कपिलोऽप्यर्धरात्रे समागतःसाधुवधनार्थः ।।४७

गुजराती अनुवाद :–

रात्रिमां स्वाध्याय करीने ते बंने मुनि सुइ गया त्यारे रात्रिना मध्यमां कपिल पण साधुना वध माटे आव्यो।

हिन्दी अनुवाद :–

रात में स्वाध्याय करने के बाद दोनों मुनि सो गए। तब आधीरात में कपिल भी साधुओं की हत्या करने के लिए आया।

गाहा :–

आयड्ढिऊण खग्गं जाव पहारं करेइ साहुस्स।
रुट्ठाए देवयाए पहओ सो तेण खग्गेण ।।४८।।

संस्कृत छाया :–

आकृष्य खड्गं यावत् प्रहारं करोति साधोः।
रुष्टया देवतया प्रहतः स तेन खड्गेन ।।४८।।

गुजराती अनुवाद :–

तलवार काढीने ते साधु पर वार करवा जाय छे त्यां गुस्से थयेला देवे ते तलवार थी कपिलने ज मारी नाख्यो।

हिन्दी अनुवाद :–

तलवार निकालकर वह साधु पर वार करने जा ही रहा था कि क्रोधित हुए देव ने तलवार से कपिल को ही मार दिया।

गाहा :–

रोद्द-ज्झाणोवगओ मरिऊण गओ बिइज्ज-पुढवीए।
मुणिणोवि निरइयारं सामन्नं काउं बहु-कालं ।।४९।।
कालं काउं विहिणा दोन्निवि सोहम्म-नाम-कप्पम्मि।
उप्पन्ना सुह-प्पन्ना अच्छर-गण-संकुल-विमाणे ।।५०।।

संस्कृत छाया :–

रौद्र-ध्यानोपगतो मृत्वा गतो द्वितीय-पृथिव्याम् ।
मुन्यपि निरतिचारं श्रामण्यं कृत्वा बहुकालम् ।।४९।।
कालं कृत्वा विधिना द्वावपि सौधर्म-नाम-कल्पे ।।
उत्पन्नौ शुभपुण्यात् (सुखपूर्णौ) अप्सरा-गण-सङ्कुलविमाने ।।५०।। युग्मम्।।

गुजराती अनुवाद :–

रौद्रध्यानथी मरीने कपिलनां जीव बीजी नारकी मां गयो अने मुनि भगवंतों घणो काल निरतिचार संयम पाळी ने विधिपूर्वक काल धर्म पामी सौधर्मा देवलोक मां शुभभाव थी खूबज अप्सरावाळा देव विमान मां उत्पन्न थया।

हिन्दी अनुवाद :–

रौद्र ध्यान पूर्वक मरकर कपिल का जीव नरक में गया। और मुनि भगवंत निरतिचार संयम तथा विधिपूर्वक शरीर धर्म काल प्राप्त कर सौधर्म देवलोक में शुमभाव से अत्यधिक अप्सराओं वाले देव विमान में उत्पन्न हुए।

गाहा :–

तत्तो य पउम जीवो सागरमेगं तु आउयं तत्थ ।
अणुहविऊणिह दीवे एरवए विजय-नयरीए ।।५१।।
धणभूइ-नामगस्स ओ जाओ तणओ सुधम्म-नामोत्ति ।
काऊण य सामन्नं उप्पन्नो बीय-कप्पम्मि ।।५२।।

संस्कृत छाया :–

ततश्च पद्मजीवः सागरमेकन्तु आयुस्तत्र ।
अनुभूयेह द्वीपे ऐरावते विजय-नगर्याम् ।।५१।।
धनभूति-नामकस्य ओ जातस्तनयः सुधर्मनामेति ।
कृत्वा च श्रामण्य-मुत्पन्नो द्वितीय-कल्पे ।।५२।। (युग्मम्)

गुजराती अनुवाद :–

आ बाजु पद्मराजनो जीव आयुष्प पूरुकरी आ जंबुद्वीपमां ऐरावत क्षेत्रमां विजयनगर मां धनभूति ना पुत्र सुधर्म नामे जन्म्या त्यां साधु पणु स्वीकारीने बीजा देव लोकमां उत्पन्न थयो।

हिन्दी अनुवाद :–

इधर पद्मराज का जीव एक सागरोपम की आयु पूरी कर इस जम्बूद्वीप के ऐरावत क्षेत्र में विजयनगर में धनभूति के पुत्र सुधर्म नाम से जन्म लिया। वहाँ भी श्रमणधर्म स्वीकार कर दूसरे देवलोक में उत्पन्न हुआ।

गाहा :–

चंदज्जुणे विमाणे ससिप्पहो नाम सो सुरो जाओ ।
दो चेव सागराइं संपुन्नं आउयं तस्स ।।५३।।

संस्कृत छाया :–

चन्द्रार्जुने विमाने शशिप्रभो नाम सः सुरो जातः ।
द्वौ चैव सागरौ सम्पूर्णमायुष्कं तस्य ।।५३।।

गुजराती अनुवाद :–

त्यां चन्द्रार्जुन नामना विमान मां शशीप्रभ नामनो बे सागरोपमनां आयुष्य वाळो देव थयो।

हिन्दी अनुवाद :–

वहाँ वह चन्द्रार्जुन नाम के विमान में शशिप्रभ नाम का दो सागरोपम आयुष्यवाल देव हुआ।

गाहा :–

भद्द! विहुप्पह! संपइ विमाण-सामी उ सो सुरो तुम्ह ।
जस्साएसेण तुमं समागओ मह समीवम्मि ।।५४।।

संस्कृत छाया :–

भद्र! विधुप्रभ! सम्प्रति विमानस्वामी तु स सुरस्तव ।
यस्यादेशेन त्वं समागतो मम समीपे ।।५४।।

गुजराती अनुवाद :–

हे भद्र विधुप्रभ! ते देव तमारा विमाननो स्वामि छे जेना आदेश थी तूं मारी पासे आव्यो छे।

हिन्दी अनुवाद :–

हे भद्र विधुप्रभ! वह देव तुम्हारे विमान का स्वामी है जिनके आदेश से तूं मेरे पास आया है।

गाहा :–

सो समरकेउ-जीवो सागरमेगं तु अट्ठ-पलिएहिं ।
अब्भहियं अणुभविउं देव-भवे अह चुओ तत्तो ।।५५।।

संस्कृत छाया :–

स समरकेतुजीवः सागरमेकं तु अष्टपल्योपमैः ।
अभ्यधिकमनुभूय देवभवेऽथ च्युतस्ततः ।।५५।।

गुजराती अनुवाद :–

ते समरकेतु नो जीव बे सागरोपम अने ऊपर आठ पल्योपमनुं देवनुं आयुष्य पूरूं करीने त्यांथी च्यवीने।

हिन्दी अनुवाद :–

वह समरकेतु जीव दो सागरोपम और आठ पल्योपम की देव की आयु पूर्ण कर वहाँ से च्यवित होकर....

गाहा :–

एत्थेव भरह-खेत्ते कुसग्ग-नयरम्मि भद्दकित्तिस्स ।
रन्नो पिय-महिलाए सुबंधुदत्ताए कुच्छीए ।।५६।।

संस्कृत छाया :–

अत्रैव भरतक्षेत्रे कुशाग्रनगरे भद्रकीर्तेः ।
राज्ञः प्रिय-महिलायाः सुबन्धुदत्तायाः कुक्ष्याम् ।।५६।।

गुजराती अनुवाद :–

आज भरतक्षेत्रमां कुशाग्रनगरमां भद्रकीर्ती महाराजनी सुबंधुदत्ता नामनी राणीनी कुक्षि मां आव्यो।

हिन्दी अनुवाद :–

इस भरत क्षेत्र के कुशाग्रनगर में भद्रकीर्ति महाराज की सुबंधुदत्ता नामक रानी की कोख में आया।

गाहा :–

उप्पन्नो सो देवो जाओ य कमेण दारओ तत्तो ।
धणवाहणोत्ति नामं विहियं से उचिय-समयम्मि ।।५७।।
वड्ढंतो य कमेण पत्तो अह जोव्वणं जणाणंदं ।
अहिसिंचिय तं रज्जे जाओ समणो पिया तस्स ।।५८।।

संस्कृत छाया :–

उत्पन्नः स देवो जातश्च क्रमेण दारकस्ततः ।
धनवाहन इति नाम विहितं तस्योचित-समये।।५७।।
वर्धमानश्च क्रमेण प्राप्तोऽथ यौवनं जनानन्दम् ।
अभिसिञ्च्य तं राज्ये जातः श्रमणः पिता तस्य ।।५८।।

गुजराती अनुवाद :–

उत्पन्न थयेलो ते देवनुं त्यां पुत्र रूपे उचित समये धनवाहन एवुं नाम कराव्युं। क्रमथी वधता यौवन मां आवेला तेने राज्य पर अभिषेक करी ने पिताजीए दीक्षा लीधी।

हिन्दी अनुवाद :–

उत्पन्न हुए उस देव के पुत्र रूप में उसका उचित समय आने पर धनवाहन नामकरण हुआ। क्रम से उम्र बढ़ने पर युवावस्था में आने पर उसे राजगद्दी पर अभिषेक कर पिता ने दीक्षा ले ली।

गाहा :–

सोवि बहु-पुव्व-लक्खे रज्जं परिवालिऊण संबुद्धो ।
नरवाहणं तु पुत्तं रज्जे ठविऊण पव्वइओ ।।५९।।

संस्कृत छाया :–

सोऽपि बहुपूर्वलक्षाणि राज्यं परिपाल्य सम्बुद्धः ।
नरवाहनं तु पुत्रं राज्ये स्थापयित्वा प्रव्रजितः ।।५९।।

गुजराती अनुवाद :–

ते धनवाहने पण लाखो पूर्व सुधी राज्य संभालीने बोध पामी ने नरवाहन ने राज्य आपीने दीक्षा लीधी।

हिन्दी अनुवाद :–

वह धनवाहन भी लाखों पूर्व समय तक राज्य संभालने के बाद बोधि प्राप्त कर नरवाहन को राज्य देकर अपने दीक्षा ले लिया।

गाहा :–

भद्द! विहुप्पह! सो हं विहरंतो अज्ज इह पुरे पत्तो ।
अह एग-राइयाए ठिओ य पडिमाए अह एत्थ ।।६०।।

संस्कृत छाया :–

भद्र! विधुप्रभ! सोऽहं विहरन्नद्येह पुरे प्राप्तः ।
अथैकरात्रिक्या स्थितश्च प्रतिमयाऽथात्र ।।६०।।

गुजराती अनुवाद :–

हे विधुप्रभ भद्र, ते हुं धनवाहन विचरतो आ नगर मां आव्यो ने एक रात्रिनी प्रतिमा मां रहेलो।

हिन्दी अनुवाद :–

हे विधुप्रभ भद्र! वह मैं धनवाहन विचरण करते हुए इस नगर में आया और एक रात की प्रतिमा में रहा।

गाहा :–

सोवि हु कविलो नरए अणुहविऊं दारुणं महं दुक्खं ।
सागरमेगं अहियं आउं भोत्तूण उव्वट्टो।।६१।।

संस्कृत छाया :–

सोऽपि खलु कपिलो नरकेऽनुभूय दारूणं महद् दुःखम् ।
सागरमेकमधिकमायुर्भुक्त्वोद्वृत्तः ।।६१।।

गुजराती अनुवाद :–

पेलो कपिल पण नरक मां खूबज दुःख वेठीने एक सागरोपम थी वधु अयुष्य भोगवीने बहार आव्यो।

हिन्दी अनुवाद :–

वह कपिल भी नर्क में एक सागरोपम से भी अधिक समय बिताकर आयु का भोग कर बाहर आया।

गाहा :–

जाओ मगहा विसए आभीरो साभडोत्ति नामेण ।
काऊण य बाल-तवं भवणवई सो सुरो जाओ ।।६२।।

संस्कृत छाया :–

जातो मगध-विषयेऽऽभीरः साभड इति नाम्ना ।
कृत्वा च बाल-तपो भवनपतिः स सुरो जातः ।।६२।।

गुजराती अनुवाद :–

मगध देशमां साभड नामनो भरवाड थयो. त्यां अज्ञान तप करीने भवनपतिदेव थयो।

हिन्दी अनुवाद :–

मगध देश में साभड नामक एक भरवाड़ हुआ। वहाँ अज्ञान तप कर वह भवनपति देव हुआ।

गाहा :–

परमाहम्मिय-देवो उवरुद्दो नाम सो तहिं जाओ ।
दट्ठूण ममं इहइं समागओ आसुरुत्तोत्ति ।।६३।।

संस्कृत छाया :–

परमाधार्मिकदेव उपरुद्रो नामा स तत्र जातः ।
दृष्ट्वा मामिह समागत आशु रुष्ट इति ।।६३।।

गुजराती अनुवाद :–

परमाधामी देवमां उपरुद्र नामनो देव थयो अने मने आ नगर मां आवेलो जोइ ने खूबज गुस्से थयो।

हिन्दी अनुवाद :–

परमाधामी देव में उपरुद्र नामक देव हुआ और वह मुझे इस नगर में आया हुआ देखकर खूब क्रोधित हुआ।

गाहा :–

सुमरंतो तं वइरं समागओ तेण मह वहट्ठाए ।
एयं वइर-निमित्तं समासओ तुह मए सिट्ठं ।।६४।।

संस्कृत छाया :–

स्मरंस्तद् वैरं समागतस्तेन मम वधनार्थे ।
एतद् वैर-निमित्तं समासतस्तुभ्यं मया शिष्टम् ।।६४।।

गुजराती अनुवाद :–

ते वेरनु स्मरण करतो मने मारवा माटे आव्यो आ रीते में वेरनुं निमित्त संक्षेप मां कहयुं। आ प्रमाणे केवलीओ जवाब आप्यो।

हिन्दी अनुवाद :–

वह दुश्मनी का स्मरण कर मुझे मारने के लिए आया। इस प्रकार मैंने दुश्मनी का कारण संक्षेप में बताया। इस प्रकार केवली ने जवाब दिया।

गाहा :–

भो चित्तवेग! तत्तो पुणरवि सो केवली मए पुट्ठो ।
भयवं! केत्तियमाउं कत्थ व मह होज्ज उप्पत्ती? ।।६५।।

संस्कृत छाया :–

भोश्चित्रवेग! ततः पुनरपि स केवली मया पृष्टः ।
भगवन्! कियतायुः कुत्र वा मम भवेदुत्पत्तिः?।।६५।।

गाहा :–

को व पिया मह होही बोहिस्सइ को जिणिंद-धम्मम्मि? ।
एवं च मए भणिओ, भयवं! सो भणिउमाढत्तो ।।६६।।

संस्कृत छाया :–

को वा पिता मम भविष्यति? भोत्स्यति को जिनेन्द्र-धर्मे? ।
एवं च मया भणितो भगवन्! स भणितु-मारब्धः ।।६६।।

गुजराती अनुवाद :–

हे चित्रवेग! फरी में केवली ने पूछ्युं के मारु केटलुं आयुष्य बाकी छे अने हुं क्यां उत्पन्न थईश? कोण मारो पिता थशे अने कोण मने जिनेश्वर नो धर्म प्रतिबोध करशे। त्यारे केवली भगवंते फरमाव्युं।

हिन्दी अनुवाद :–

हे चित्रवेग! बाद मैने केवली से पूछा कि मेरी कितनी उम्र बाकी है और मैं कहाँ पैदा होऊँगा। मेरा पिता कौन होगा और कौन मुझे जिनेश्वर धर्म का प्रतिबोध देगा। तब केवली भगवंत ने फरमाया।

गाहा :–

चिट्ठइ आउगसेसं एगवीसं वास कोडि-कोडीओ ।
तत्तो चइऊण तुमं आउक्खए हत्थिणपुरम्मि ।।६७।।
सिरि-अमरकेउ-रन्नो देवी-कमलावईए कुच्छिम्मि ।
बहु-उवयाइय-लद्धो उववज्जिसि पुत्त-भावेण ।।६८।।

संस्कृत छाया :–

तिष्ठत्यायुष्क शेष-मेकविंशति-वर्ष-कोटीकोटयः ।
ततश्च्युत्वा त्वमायुःक्षये हस्तिनापुरे ।।६७

श्री अमरकेतुराज्ञो देवीकमलवत्याः कुक्षौ ।

बहूपयाचित-लब्ध उपपदिष्यसे पुत्रभावेन ।।६८।।युग्मम्।।

गुजराती अनुवाद :–

एकवीश कोड़ाकोड़ी वर्ष तारुं आयुष्य बाकी छे जे पुरुं थये हस्तिनापुर ना अमरकेतु राजानी कमलावती राणीनी कुक्षि मां घणी झंखनाने अंते तु तेमने पुत्र रुपे प्राप्त थशे।

हिन्दी अनुवाद :–

इक्कीस कोड़ाकोड़ी वर्ष तुम्हारी उम्र शेष है। इसके पूरा होने के बाद तूं हस्तिनापुर के राजा अमरकेतु की रानी कमलावती की कोख से बड़े इंतजार के बाद पुत्र रूप में प्राप्त होगा।

गाहा :–

जणणीइ समं तत्थ य अवहरिओ पुव्व-वेरिय-सुरेण ।

भो चित्तवेग! खयराहिवस्स गेहम्मि वड्ढिहिसि ।।६९।।

संस्कृत छाया :–

जनन्या समं तत्र चापहृतः पूर्ववैरिसुरेण ।

भो श्चित्रवेग! खेचराधिपस्य गेहे वर्धिष्यसे ।।६९।।

गुजराती अनुवाद :–

त्यां हे चित्रवेग मातानी साथे पूर्वना वेरी देव वड़े अपहरण करायेलो तुं विद्याधर राजाना घरे मोटो थईश।

हिन्दी अनुवाद :–

वहाँ हे चित्रवेग! माता के साथ पूर्व वेरी देव द्वारा अपहरण किया हुआ तूं विद्याधर राजा के घर पर बड़ा होगा।

गाहा :–

एंतेण मह समीवे दिव्व-मणी जस्स ढोईओ तुमए ।

सो च्चिय परमत्थ-पिया भविस्सइ तम्मि जम्मग्मि ।।७०।।

संस्कृत छाया :–

आयता मम समीपे दिव्यमणिर्यस्य ठौकितस्त्वया ।

स एव परमार्थपिता भविष्यति तस्मिन् जन्मनि ।।७०।।

गुजराती अनुवाद :–

अही आवतां मारी नजीक मां दिव्य मणि जेने तारा वड़े अपायो तेज तारा वास्तविक पिता ते भव मां थशे।

हिन्दी अनुवाद :–

यहाँ मेरे पास आते समय दिव्य मणि जिसको तुम्हारे द्वारा दिया गया वही उस भव में तुम्हारा वास्तविक पिता होगा।

गाहा :–

पासम्मि सुप्पइट्ठस्स सूरिणो पाविऊण गिहि-धम्मं ।
अह लद्धुं समणत्तं काहिसि संसार-वोच्छेयं ।।७१।।

संस्कृत छाया :–

पार्श्वे सुप्रतिष्ठस्य सूरेः प्राप्य गृहिधर्मम् ।
अथ लब्ध्वा श्रमणत्वं करिष्यसि संसारव्यवच्छेदम् ।।७१।।

गुजराती अनुवाद :–

सुप्रतिष्ठ आचार्य भगवंत पासे तुं श्रावक धर्मनो स्वीकार करीने पछी साधुपणु स्वीकारीने संसारनो अंत करीश।

हिन्दी अनुवाद :–

सुप्रतिष्ठ भगवंत के साथ तूं श्रावक धर्म स्वीकार कर बाद में साधु हो तुम संसार का अंत करोगे।

गाहा :–

इय केवलिणा भणिए तहत्ति बहु मन्निऊण तव्वयणं ।
ति पयक्खिणिऊण पुणोऽभिवंदिओ सो मए भयवं ।।७२।।

संस्कृत छाया :–

इति केवलीना भणिते तथेति बहुमत्वा तद्वचनम् ।
त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य पुनरभिवन्दितः स मया भगवान् ।।७२।।

गुजराती अनुवाद :–

आ प्रमाणे केवलीए कहे छते तेमनी वातनो। स्वीकार करीने बहुमान पूर्वक मानीने त्रण प्रदक्षिणा करी फरी थी तेमने वंदन कर्युं.

हिन्दी अनुवाद :–

इस प्रकार केवली द्वारा कहे जाने पर उनकी बात स्वीकार कर तथा बहुमान पूर्वक मानकर तीन बार प्रदक्षिणा कर फिर से उन्हें वन्दन किया।

गाहा :–

तत्तो उप्पइऊणं समागओ एत्थ तुह समीवम्मि ।
जं तं तुमए पुट्ठं तं सव्वं साहियं एयं ।।७३।।

संस्कृत छाया :–

तत उत्पत्य समागतोऽत्र तव समीपे ।
यत् तत्त्वया पृष्टं तत् सर्वं कथितमेतद् ।।७३।।

गुजराती अनुवाद :–

त्याथी उड़ीने हूँ तारी पासे आव्यों छुं ने ते जे मने पूछ्युं तेनो खुलासो आप्यो।

हिन्दी अनुवाद :–

वहाँ से उड़कर मैं तेरे पास आया हूँ। तो तुमने जो मुझसे पूछा उसका खुलासा मैंने कर दिया।

गाहा :–

भो चित्तवेग! संपइ कायव्वं जं मए तमाइससु ।
तो भणइ चित्तवेगो सुर-वर! निसुणेसु मह वयणं ।।७४।।

संस्कृत छाया :–

भोश्चित्रवेग! सम्प्रति कर्तव्यं यन्मया तदादिश ।
ततो भणति चित्रवेगः सुरवर! निःशृणु मम वचनम् ।।७४।।

गुजराती अनुवाद :–

हे चित्रवेग! हवे मारा लायक जे काम होय ते मने कहे, त्यारे चित्रवेगे कहयुं हे देव तूं मारी वात सांभल।

हिन्दी अनुवाद :–

हे चित्रवेग! अब मेरे योग्य कोई कार्य हो तो मुझे कहो। तब चित्रवेग ने कहा हे देव! आप मेरी बात सुनिए।

गाहा :–

नहवाहणेण नीया जा सा मह भारिया सुदुक्खत्ता ।
तयवत्थं मं दट्ठुं विलवंती कलुण-सद्देण ।।७५।।

संस्कृत छाया :–

नभोवाहनेन नीता या सा मम भार्या सुदुःखार्ता ।
तदवस्थं मां दृष्ट्वा विलपन्ती करुण-शब्देन ।।७५।।

गुजराती अनुवाद :–

नभोवाहन वड़े जे लई जवायेल मारी पत्नी खूबज दुखी थएली जेणीए मारी ते वखतनी खराब हालत जोई ने करुण शब्द बड़े कल्पांत कर्यो हतो।

हिन्दी अनुवाद :–

नभोवाहन द्वारा ले जायी गयी मेरी पत्नी बहुत दुःखी हुई थी, उसने उस समय मेरी खराब हालत देखकर करुण शब्द से कल्पान्त किया था।

गाहा :–

भुयगोह-वेढियस्सवि न तारिसं आसि मज्झ मण दुक्खं ।
जह तीए कलुण-रोवण-विलाव-सद्दं सुणंतस्स ।।७६।।

संस्कृत छाया :–

भुजङ्गौघवेष्टितस्याऽपि न तादृशमासीद् मम मनोदुःखम् ।
यथा तस्याः करुणरुदन-विलाप-शब्दं श्रुण्वतः (स्मरतः) ।।७६।।।

गुजराती अनुवाद :–

सर्पोना समुदाय थी विंटळायेला अेवा मने जे दुःख न थयुं ते तेणीना करुणाभर्या विलापना शब्दोने याद करवाथी थयुं।

हिन्दी अनुवाद :–

सर्पों के समुदाय से बींधे हुए जाने पर भी उतना दुःख नहीं होता जितना उसके करुण भरे विलाप के शब्दों को याद कर हुआ।

गाहा :–

सा कह चिट्ठइ संपइ जीवइ व नवत्ति मज्झ साहेसु? ।
ओहि न्नाणेण तुमं जाणसि पच्चक्खमिव सव्वं ।।७७।।

संस्कृत छाया :–

सा कथं तिष्ठति सम्प्रति जीवति वा न वेति मह्यं कथय? ।
अवधिज्ञानेन त्वं जानासि प्रत्यक्षमिव सर्वम् ।।७७।।

गुजराती अनुवाद :–

हमणा तेणी क्यां छे, अने जीवे छे के नहिं ते तुं मने कहे केमके तुं तो अवधि ज्ञान थी बधु प्रत्यक्ष जुए छे।

हिन्दी अनुवाद :–

इस समय वह कहाँ है, और जीवित है कि नहीं, तुम मुझे बताओ क्योंकि तुम तो अवधि ज्ञान से सभी वस्तुओं को प्रत्यक्ष रूप से देखते हो।

गाहा :–

ईसिं हसिऊण तओ देवो वज्जरइ भद्द! निसुणेसु ।
सा तुह भज्जा नीया गंगावत्तम्मि रुयमाणी ।।७८।।

संस्कृत छाया :–

ईषद्धसित्वा ततो देवः कथयति भद्र! निःशृणु ।
सा तव भार्या नीता गङ्गावर्त्ते रूदन्ती ।।७८।।

गुजराती अनुवाद :–

थोडु हसीने ते देवे कह्युं हे भद्र! रोती एवी तारी पत्नी गंगावर्त नगरमां लई जवाई।

हिन्दी अनुवाद :–

थोड़ा हँसकर उस देव ने कहा हे भद्र! रोती हुई तुम्हारी पत्नी गंगावर्त नगर में ले जाई गयी है।

गाहा :–

नहवाहणेण तत्तो छूढा अंतेउरम्मि नियगम्मि ।
गुरु-सोय-पीडियाए किल एवं चिंतयंतीए ।।७९।।

संस्कृत छाया :–

नभोवाहनेन ततः क्षिप्तान्तःपुरे निजके ।
गुरुशोकपीडितया किलैवंचिन्तयन्त्या ।।७९।।

गुजराती अनुवाद :–

नभोवाहन राजाए पोताना अंतःपुरमां तेने मूकी त्यारे ते शोकपीड़ित थयेली ते चिंतवा लागी के।

हिन्दी अनुवाद :–

नभोवाहन राजा जब अपने अन्त:पुर में ले गया तब शोकाकुल हुई वह चिंतन करने लगी कि...

गाहा :–

सो मह दइओ तावय भीसण-भुयगेहिं गहिय सव्वंगो ।
गुरु-वेयणाए मन्ने होही पाणेण परिचत्तो ।।८०।।

संस्कृत छाया :–

स मम दयितस्तावच्च भीषणभुजङ्गैर्गृहीत-सर्वाङ्गः ।
गुरुवेदनया मन्ये भविष्यति प्राणेन परित्यक्तः ।।८०।।

गुजराती अनुवाद :–

मारो पति भयंकर सर्पो वड़े आखा शरीर थी विंटळायेलो भयंकर वेदना वड़े मरी गयो हशे अेम मानवा लागी।

हिन्दी अनुवाद :–

मेरा पति भयंकर सर्पों द्वारा पूरे शरीर में काटे जाने के कारण भयंकर वेदना से मर गया है, ऐसा मानने लगी।

गाहा :–

अह कहमवि जइ जीवइ तहवि हु मह तेण नत्थि संजोगो ।
विज्जा-बल अहिएणं पावेण इमेण हरियाए ।।८१।।

संस्कृत छाया :–

अथ कथमपि यदि जीवति तथापि खलु मम तेन नास्ति संयोगः ।
विद्याबलाधिकेन पापेनाऽनेन हृतायाः ।।८१।।

गुजराती अनुवाद :–

अथवा कदाच जीवतो हशे तो पण तेनी साथे हवे मारो संयोग थवो मुश्केल छे केमके विद्याना बळ मां अधिक सवा ते पापी वड़े हुं अपहरण करायेली छुं।

हिन्दी अनुवाद :–

अथवा कदाचित् जीते भी होंगे तो उनके साथ मेरा संयोग होना कठिन है। क्योंकि विद्या के बल में जो अधिक है, उस पापी द्वारा मैं अपहृत की गयी हूँ।

गाहा :–

ता संपइ मह जुत्तं मरिउं गुरु-सोय-दुक्ख-तवियाए ।
सुइणेवि नेव अन्नो पुरिसो मह लग्गए अंगे ।।८२।।

संस्कृत छाया :–

तस्मात् सम्प्रति मम युक्तं मर्तुं गुरुशोकदुःखतप्तायाः ।
स्वप्नेऽपि नैवान्यः पुरुषो मम लगत्यङ्गे ।।८२।।

गुजराती अनुवाद :–

तेथी हवे मारे भारे शोक थी दुखित मरवुं ज योग्य छे केमके जेथी स्वप्नमां पण मने अन्य पुरुष स्पर्शे नहिं।

हिन्दी अनुवाद :–

इसलिए अब भारी शोक से दुःखी मेरे लिए मरना ही योग्य है क्योंकि जिससे स्वप्न में भी कोई परपुरुष मेरा स्पर्श न कर सके।

गाहा :–

इय मंतिऊण तीए अइ-उग्ग-विसं तु भक्खियं सहसा ।
भंजिय लोयण-जुयलं मही-यले निवडिया तत्तो ।।८३।।

संस्कृत छाया :–

इति मन्त्रयित्वा तयाऽत्युग्रविषन्तु भक्षितं सहसा ।
भग्न लोचन-युगलं महीतले निपतिता ततः ।।८३।।

गुजराती अनुवाद :–

आम मानीने तेणीए अत्यन्त उग्र झेर खाई लीधुं जेथी एनी आंखो भांगी गई अने ते जमीन पर पटकाई गयी।

हिन्दी अनुवाद :–

ऐसा मानकर उसने उग्र जहर खा लिया जिससे उसकी आँखें ढह गयीं और वह जमीन पर गिर गयी।

गाहा :–

तदवत्थं तं दट्ठुं हाहा-सद्दो समुट्ठिओ तत्थ ।
तं सोउं नहवाहण-खयरोवि समागओ तत्थ ।।८४।।

संस्कृत छाया :–

तदवस्थां तां दृष्ट्वा हा! हा! शब्दः समुत्थितस्तत्र ।
तं श्रुत्वा नभोवाहन-खचरोऽपि समागतस्तत्र ।।८४।।

गुजराती अनुवाद :–

तेणीने आ हालतमां जोईने त्यां हाहाकार मची गयो जे सांभळी ने नभोवाहन विद्याधर त्यां आव्यो।

हिन्दी अनुवाद :–

उसकी यह हालत देखकर वहाँ हाहाकार मच गया जिसे सुनकर नभोवाहन विद्याधर वहाँ आया।

गाहा :–

नाऊण विस-वियारं मंते तंते पउंजई विविहे ।
विस-निम्महणे मणिणो आबंधई तीए अंगम्मि ।।८५।।

संस्कृत छाया :–

ज्ञात्वा विषविकारं मन्त्रान् तन्त्राणि प्रयुङ्क्ते विविधानि ।
विष-निर्मथने मणीनाबध्नाति तस्या अङ्गे ।।८५।।

गुजराती अनुवाद :–

झेर नुं परिणाम जाणीने विविध प्रकार ना मंत्र-तंत्र नो उपयोग करवा मां आव्यो अने झेर काढवा माटे तेणीने अंगे मणीओ बांधवा मां आव्या।

हिन्दी अनुवाद :–

जहर का परिणाम जानकर उसे उतारने के लिए विविध प्रकार के तन्त्र-मन्त्र का उपयोग किया गया और जहर निकालने के लिए उसके शरीर में मणि बांधी गयी।

गाहा :–

न य तीए कोवि गुणो जाओ विस-धारियाए बालाए ।
आहूया अह बहवे विस-मंत वियाणया खयरा ।।८६।।

संस्कृत छाया :–

न च तस्याः कोऽपि गुणो जातो विषधारिताया बालायाः ।
आहूताऽथ बहवो विष-मन्त्र-विज्ञायकाः खचराः ।।८६।।

गुजराती अनुवाद :–

पण तेनी कोई असर ओ स्त्री ऊपर थई नहि तेथी मंत्रना जाणकारो ने विद्याधरो ने बोलाववा मां आव्या।

हिन्दी अनुवाद :–

लेकिन उसका कोई असर इस स्त्री पर नहीं हुआ इसलिए मन्त्र के जानकारों-विद्याधरों को बुलवाया।

गाहा :–

सव्वायर-लग्गेहिवि तेहिवि पउणा न सक्किया काउं ।
ताहे मयत्ति काउं मय-किच्चं तीए काऊण ।।८७।।
नीया पेय-वणम्मी नहवाहण-परियणेण सा बाला ।
चीयाए पक्खिविउं तत्तो उद्दीविओ जलणो ।।८८।।

संस्कृत छाया :–

सर्वादरलग्नैरपि तैरपि प्रगुणा न शक्ताः कर्तुम् ।
तदा मृतेति कृत्वा मृत-कृत्यं तस्याः कर्तुम् ।।८७।।
नीता प्रेतवने नभोवाहन-परिजनेन सा बाला ।
चितायां प्रक्षिप्य तत उदीप्तो ज्वलनः ।।८८।। युग्मम्।।

गुजराती अनुवाद :–

खूब आदरपूर्वक ते बधाए मेहनत करी पण तेणी सारी थई नहि, त्यारे ते मरी गई अेम मानी ने तेनुं मृतकृत्य करवा माटे तेणीने स्मशान मां लई गया अने नभोवाहन ना परिजनोए चिता मां नाखी ने अग्नि प्रगटाव्यो।

हिन्दी अनुवाद :–

बहुत आदरपूर्वक उन सभी ने परिश्रम किया लेकिन वह अच्छी नहीं हुई। तब उसे मरा हुआ मानकर उसका दाह संस्कार करने के लिए स्मशान में ले गये और नभोवाहन के परिजनों ने उसे चिता पर रखकर आग दी।

गाहा :–

एत्तियमेत्तं साहइ सो देवो जाव चित्तवेगस्स ।
धणदेव! ताव निसुणसु जं संवित्तं तहिं तइया ।।८९।।

संस्कृत छाया :–

एतावन्मात्रं कथयति स देवो यावत् चित्रवेगस्य ।
धनदेव! तावद् निःशृणु यत् संवृत्तं तस्मिन्तदा ।।८९

गुजराती अनुवाद :–

आवु देव चित्रवेगने कहे छे अेटलीवार मां हे धनदेव! शुं बिना बनी ते तु सांभळ।

हिन्दी अनुवाद :–

ऐसा देव चित्रवेग को कहता है, इतने में हे धनदेव क्या बात बनी, वह तूं सुन।

गाहा :–

सोउं दइया-मरणं दूसह गुरु दुक्ख-दलिय सव्वंगो ।
वज्जासणि-भिन्नो इव उग्ग-भुयंगेण गसिउव्व ।।९०।।
गहिउव्व रक्खसेणं पहओ इव मोग्गरेण गरुएण ।
नीससिय दीह-दीहं गुरु-सोयाऊरिओ खयरो ।।९१।।
मुच्छा-निमीलियच्छो धसत्ति धरणी-यलम्मि सो पडिओ ।
निन्नट्ठ-सयल-चेट्ठो संजाओ विगय-जीउव्व ।।९२।।

संस्कृत छाया :–

श्रुत्वा दयितामरणं दुस्सह-गुरु-दुःख-दलितसर्वाङ्गः ।
वज्राशनि-भिन्न इव उग्र भुजङ्गेन ग्रसित इव ।।९०।।
गृहीत इव राक्षसेन प्रहत इव मुद्गरेण गुरुकेन ।
निश्वस्य दीर्घ-दीर्घं गुरु-शोकापूरितः खचरः ।।९१।।
मूर्च्छा-निमीलिताक्षो धसिति धरणी-तले स पतितः ।
निर्नष्टसकलचेष्टः सञ्जातो विगत-जीव इव ।।९२।। त्रिभिः कुलकम् ।।

गुजराती अनुवाद :–

पोताना पत्नीना मरणने सांभळी ने अत्यन्त असह्य भारे दुःखथी पीडायेलो वज्र थी हणायेलोनी जेम के उग्र सर्प वड़े दंशायेला नी जेम के कोई राक्षस थी ग्रहण करायेलानी जेम के भारे गदाथी प्रहार करायेला नी जेम खूबज शोक थी पीड़ित थयेलो ते विद्याधर लाम्बा निःसासा नाखी ने मूर्छाथी बेहोश थयेलो धरती ऊपर पड़यो अने बधी चेष्टाओ थी रहित निर्जीव नी जेवो थयो।

हिन्दी अनुवाद :–

अपनी पत्नी की मृत्यु को सुनकर अत्यन्त असह्य दुःख से पीड़ित जैसे उसे वज्र से घायल किया गया हो, जैसे उग्र सांप ने उसे डंस लिया हो, जैसे किसी राक्षस ने उसे ग्रस लिया हो या जैसे भारी गदा से उसपर किसी ने प्रहार कर दिया हो, ऐसा अत्यन्त शोक से पीड़ित हुआ वह विद्याधर लम्बी निःस्वास लेकर मूर्छा से बेहोश हुआ जमीन पर गिर पड़ा, उसकी सभी चेष्टाएँ जाती रहीं और वह निर्जीव की तरह हो गया।

गाहा :–

दट्ठूण चित्तवेगं तदवत्थं ताहे तेण देवेण।
सीयल-जलमाणेत्ता सित्तो सो सव्व-अंगेसु ।।९३।।
विहिओ य मए पवणो सुकोमलो नियय-उत्तरीएण।
तत्तो खणंतराओ लद्धूणवि चेयणं कहवि ।।९४।।

संस्कृत छाया :–

दृष्ट्वा चित्रवेगं तदवस्थं तदा तेन देवेन।
शीतलजलमानीय सिक्तः स सर्वाङ्गेषु ।।९३।।
विहितश्च मया पवनः सुकोमलो निजोत्तरीयेण।
ततः क्षणान्तराद् लब्ध्वाऽपि चेतनां कथमपि ।।९४।।

गुजराती अनुवाद :–

चित्रवेगनी आवी अवस्था ने जोईने त्यारे ते देवे ठंडु पाणी लावी ने तेना बधा अंगों पर सींच्युं. अेने मारा खेस वड़े धीमो पवन नाख्यो त्यारे मांड-मांड थोड़ी चेतना आवी।

हिन्दी अनुवाद :–

चित्रवेग की अवस्था देखी तभी उस देव ने ठंडा पानी लाकर उसके सभी अंगों पर छिड़का और अपने कोमल उत्तरीय से धीरे-धीरे हवा दिया तब थोड़ी थोड़ी चेतना आई।

गाहा :–

पुणरुत्तं मुच्छिज्जइ अइगुरु-अणुराय-मोहिओ खयरो ।
अइवल्लह-महिलाए मरणं सरिऊण दुक्खत्तो ।।९५।।

संस्कृत छाया :–

पुनरुक्तं (पुनः पुनः) मुर्च्छयतेऽतिगुर्वनुराग-मोहितः खचरः ।
अतिवल्लभ-महिलाया मरणं स्मृत्वा दुःखार्तः ।।९५।।

गुजराती अनुवाद :–

अत्यन्त रागथी मोहित थयेलो ते विद्याधर पोतानी पत्नी ना मरणने याद करीने पीड़ित थयेलो वारंवार मूर्च्छित थाय छे।

हिन्दी अनुवाद :–

अत्यन्त प्रेम से मोहित हुआ वह विद्याधर अपनी पत्नी की मृत्यु को याद कर बार-बार मूर्च्छित हो रहा था।

गाहा :–

कहकहवि समासत्थो विहिओ गुरु-सोय-पीडिओ तहवि ।
थूलंसुए मुयंतो अहो-मुहो चिट्ठई जाव ।।९६।।
ताव य सुरेण भणिओ महिलामेत्तस्स कारणे कीस ।
आयसिज्जइ अप्पा एवंविह-सोय-करणेणं? ।।९७।।

संस्कृत छाया :–

कथंकथमपि समाश्वस्थो विहितो गुरुशोकपीडितस्तथापि ।
स्थूलाश्रुकाणि मुञ्चन्नधोमुखस्तिष्ठति यावत्।।९६।।
तावच्च सुरेण भणितो महिलामात्रस्य कारणे कस्मात् ।
आयास्यते आत्मा एवंविध-शोककरणेन? ।।९७।।

गुजराती अनुवाद :– शोकथी पीड़ित थयेलो गमे तेम आश्वासन पामेलो मोटा मोटा आंसू पाड़ता नीचुं मोढुं राखीने बेठो अेटलीवार मां देवे कह्युं स्त्रीना कारणे तुं शा माटे आटलो शोक करे छे?

हिन्दी अनुवाद :–

शोक से पीड़ित अनेक आश्वासन दिए जाने पर भी बड़े-बड़े आंसू गिराता नीचे मुख कर बैठा। तभी देव ने कहा! स्त्री के कारण तूं किस लिए इतना शोक कर रहा है?

गाहा :–

विबुह-जण निंदणिज्जं असमंजसचे-चेट्ठियं पमोत्तूण ।
वत्थु-सरूवं सुंदर! भावेयव्वं पयत्तेण ।।९८।।

संस्कृत छाया :–

विबुधजन-निन्दनीयमसमञ्जस-चेष्टितं प्रमुच्य ।
वस्तु-स्वरूपं सुन्दर! भावयितव्यं प्रयत्नेन ।।९८।।

गुजराती अनुवाद :–

बुद्धिमान लोकोने माटे निंदनीय अने अविचारी चेष्टाओ ने छोड़ीने हे सुन्दर! तुं प्रयत्न पूर्वक वस्तुना स्वरूपंनुं चिंतन कर।

हिन्दी अनुवाद :–

बुद्धिमान लोगों के लिए निन्दनीय और अविचारी चेष्टाओं को छोड़ हे सुन्दर! तुम कोशिश कर वस्तु के स्वरूप का चिन्तन करो।

गाहा :–

संसारम्मि अणंते परिब्भमंताण होंति जीवाण ।
संयोग-विप्पओगा इट्ठाणिट्ठेहिं सयहुत्तं ।।९९।।

संस्कृत छाया :–

संसारेऽनन्ते परिभ्रमतां भवन्ति जीवानाम् ।
संयोग-विप्रयोगा इष्टानिष्टैः शतकृत्वः ।।९९।।

गुजराती अनुवाद :–

अनंतीवार आ संसारमां भटकता जीवने प्रियने अप्रिय संयोग ने वियोग सेंकड़ोवार थता होय छे।

हिन्दी अनुवाद :–

अनंत बार इस संसार में भटकते जीव को अप्रिय से संयोग और प्रिय से वियोग सैंकड़ों बार होता है।

गाहा :–

न हु हरिसो संजोगे नेवं विसाओवि इट्ठ-विरहम्मि ।
कायव्वो बुद्धिमया संसार-सरूवयं नाउं ।।१००।।

संस्कृत छाया :–

न खलु हर्षः संयोगे नैव विषादोऽपि इष्टविरहे ।
कर्तव्यो बुद्धिमता संसार-स्वरूपं ज्ञात्वा ।।१००।।

गुजराती अनुवाद :–

तेथी खरेखर ईष्टना संयोग मां हर्ष अने ईष्ट ना वियोग मां विषाद करवो बुद्धिमान ने, संसार स्वरूप ने जाणेलाने माटे योग्य नथी।

हिन्दी अनुवाद :–

इसलिए इष्ट के संयोग से हर्ष एवं इष्ट के वियोग से दुःख को प्राप्त होना बुद्धिमान के लिए तथा जिसे संसार के स्वरूप का भलीभाँति ज्ञान हो, योग्य नहीं है।

गाहा :–

किंच

पुव्व-भवे जो तुमए अणुरागो नेव उज्झिओ तइया ।
समणत्तणेवि पत्ते तस्स पभावाउ सग्गेवि ।।१०१।।
रिद्धि-बल-तेय-हीणो आसि तुमं तह य एत्थ जम्मम्मि ।
एवं विओय-दुक्खं पत्तं तक्कम्म-दोसेण ।।१०२।।

संस्कृत छाया :–

किंच

पूर्वभवे यस्त्वयाऽनुरागो नैवोज्झितस्तदा।
श्रमणत्वेऽपि प्राप्ते तस्य प्रभावात् स्वर्गेऽपि ।।१०१।।
ऋद्धिबलतेजोहीन आसीत्त्वं तथा चात्र जन्मनि ।
एवं वियोग-दुःखं प्राप्तं तत्कर्मदोषेण ।।१०२।। युग्मम्।।

गुजराती अनुवाद :–

वळी पूर्वभवमां ते साधु पणु लीधा छतां तेणी ना प्रत्ये राग छेड़्यो न हतो. तेथी तेना प्रभाव थी स्वर्गमां पण रिद्धि, वय अने तेज मां तु हीन थयो. अने आ जन्म मां पण कर्मना दोष वड़े तने पत्नीना वियोग नु दुःख प्राप्त थयु।

हिन्दी अनुवाद :–

पूर्वभव में श्रमणत्व स्वीकार कर भी उसके प्रति राग छोड़े नहीं थे। उसके प्रभाव से स्वर्ग में भी रिद्धि, वय और तेज में तूं हीन हुआ। और इस जन्म में भी उस कर्म के दोष के कारण तुम्हें पत्नी वियोग का दुःख प्राप्त हुआ।

गाहा :–

तहवि हु अज्जवि रागं तीए उवरिं न मुंचसे कीस ? ।
एवंविह-दुक्खाणं एसो च्चिय कारणं परमं ।।१०३।।

संस्कृत छाया :–

तथापि खल्वद्याऽपि रागं तस्या उपरि न मुञ्चसि कस्मात्?।
एवंविध-दुःखानामेष एव कारणं परमम् ।।१०३।।

गुजराती अनुवाद :–

तो पण आज सुधी शा कारण थी तेणी ऊपरना रागने छोड़तो नथी? आवा प्रकार ना दुःखनुं आ ज वास्तविक कारण छे।

हिन्दी अनुवाद :–

तो भी आज तक किस कारण से उस के प्रति राग नहीं छोड़ रहे हो। इस प्रकार के दुःखों का यही वास्तविक कारण है।

गाहा :–

अह भणइ चित्तवेगो सुर-वर! मह फुरइ दाहिणं नयणं ।
पहसिय-मुहो य दीससि तुमंति ता कहसु परमत्थं ।।१०४।।

संस्कृत छाया :–

अथ भणति चित्रवेगः सुरवर! मम स्फुरति दक्षिणं नयनम् ।
प्रहर्षितमुखश्च दृश्यसे त्वमिति तस्मात् कथय परमार्थम् ।।१०४।।

गुजराती अनुवाद :–

हवे चित्रवेगे कहयुं हे देव मारी जमणी आँख फरके छे अने तुं खूब खुश देखाय छे तेथी मने वास्तविक शुं छे ते कहे।

हिन्दी अनुवाद :–

तब चित्रवेग ने कहा कि हे देव! मेरी दाहिनी आँख फड़क रही है और तुम खूब खुश हो गये हो, इसलिए वास्तविकता क्या है मुझे बताओ।

गाहा :–

किं जीवइ सा बाला सच्चं चिय अहव सा मया वरई? ।
जइ ताव तुमं मित्तो आसि महं अन्न-जम्मम्मि ।।१०५।।

संस्कृत छाया :–

किं जीवति सा बाला सत्यमेवाऽथवा सा मृता वराकी? ।
यदि तावत्त्वं मित्रमासीद् मयाऽन्य-जन्मनि ।।१०५।।

गुजराती अनुवाद :–

शुं ते बाळा जीवे छे के मरी गई? केमके तूं मारो गया जन्मनो मित्र छे तेथी कहे–

हिन्दी अनुवाद :–

क्या वह स्त्री जिन्दा है या मर गई? मुझसे बता क्योंकि तू पिछले जन्म का मेरा मित्र है।

गाहा :–

दंसिज्जउ सा सिग्घं अह नवि ता मज्झ जीवियं नत्थि ।
लज्जामि बहु भणंतो एसो च्चिय निच्छओ मज्झ ।।१०६।।

संस्कृत छाया :–

दर्शयतां सा शीघ्रमथ नाऽपि तर्हि मम जीवितं नास्ति।
लज्जामि बहु भणन्नेष चैव निश्चयो मम ।।१०६।।

गुजराती अनुवाद :–

मने जल्दी थी तेना दर्शन कराव नहिंतर हुं जीवी नहिं शकुं आटलु बोलतां पण मने लज्जा आवेछे. आ मारो निश्चय छे।

हिन्दी अनुवाद :–

मुझे जल्दी से उसका दर्शन कराओ नहीं तो मैं जीवित नहीं रहूँगा। ऐसा कहते हुए भी मुझे शर्म आ रही है, किन्तु यह मेरा निश्चय है।

गाहा :–

ईसिं हसिऊण तओ देवो वज्जरइ भद्द! जइ एवं ।
ता पिट्ठओ निरुवसु जेण तयं पेच्छसे दइयं ।।१०७।।

संस्कृत छाया :–

ईषद्धसित्वा ततो देवः कथयति भद्र! यद्येवम्।
तदा पृष्ठतो निरुपय येन तां प्रेक्षसे दयिताम्।।१०७।।

गुजराती अनुवाद :–

थोडुंक हसीने देवे कहयुं हे भद्र! आमज छे तो तुं वळीने पाछळं जोईश तो तने तारी प्रियतमा देखाशे।

हिन्दी अनुवाद :–

तब देव ने थोड़ा हँसकर कहा हे भद्र! यदि ऐसा है तो अपने पीछे देखोगे तो तुम्हें तुम्हारी प्रियतमा दिखाई देगी।

गाहा :–

एवं सुरेण भणिओ वलियग्गीवं निरूवई जाव।
ताव य विहूसियंगी पेच्छइ निय-भारियं सहसा।।१०८।।

संस्कृत छाया :–

एवं सुरेण भणितो वलितग्रीवं निरूपयति यावत्।
तावच्च विभूषिताङ्गी प्रेक्षते निजभार्यां सहसा।।१०८।।

गुजराती अनुवाद :–

आ प्रमाणे देवे कीधुं त्यारे पाछळ वळीने ज्यां जुवे छे त्यां एकदम बनी ठनी ने पोतानी पत्नी ने जुवे छे।

हिन्दी अनुवाद :–

इस प्रकार देव के कहने के बाद जहाँ मुड़ के वह देखता है, एकदम बनठन कर तैयार अपनी पत्नी को देखता है।

गाहा :–

तं दट्ठु चित्तवेगो ससंकिओ निय-मणम्मि वज्जरइ।
सुर-वर! साहसु सच्चं हासं मोत्तूण मह इण्हिं।।१०९।।

संस्कृत छाया :–

तां दृष्ट्वा चित्रवेगः सशङ्कितो निज-मनसि कथयति।
सुरवर! कथय सत्यं हास्यं मुक्त्वा ममेदानीम्।।१०९।।

गुजराती अनुवाद :–

तेणी ने जोई ने चित्रवेग मनमां शंका करीने कहे छे. हे देव! तुं हसवानु बंध करीने मने कहे।

हिन्दी अनुवाद :–

उसको देखकर चित्रवेग शंका करता हुआ कहता है। हे देव! तूं हंसना बन्द कर मुझे बताओ।

गाहा :–

किंवा सच्चिय एसा नहवाहण-अवहिया महं दइया ।
मह आसासण-हेउं सुर-माया अह तुमे विहिया? ।।११०।।

संस्कृत छाया :–

किं वा सैवैषा नभोवाहनापहृता मम दयिता ।
ममाऽऽश्वासन-हेतुं सुरमायाऽथ त्वया विहिता? ।।११०।।

गुजराती अनुवाद :–

शुं आ नभोवाहने अपहरण करेली तेज मारी पत्नी छे के देवमाया करीने मारा आश्वासन माटे ते आने बनावी छे।

हिन्दी अनुवाद :–

क्या यह नभोवाहन द्वारा अपहरण की गयी वही हमारी पत्नी है कि तुमने मुझे आश्वासन देने के लिए इसे देवमाया से बनाया है।

गाहा :–

जइ ताव विसं भक्खिय मह विरहे सा मया सुदुक्खत्ता ।
ता कह इह जीवंती संपत्ता अक्खय-सरीरी! ।।१११।।

संस्कृत छाया :–

यदि तावद् विषं भक्षितं मम विरहे सा मृता सुदुःखार्ता ।
तदा कथमिह जीवन्ती सम्प्राप्ताऽक्षत-शरीरा? ।।१११।।

गुजराती अनुवाद :–

जे मारा विरह मां तेणीओ झेर खाधुं अने पीड़ा थी मरी गई तो पछी सम्पूर्ण अंगोवाळी जीवती अहीं केवी रीते देखाई।

हिन्दी अनुवाद :–

जिसने मेरे विरह में जहर खा लिया था और पीड़ा से मर गयी थी, तो वह सम्पूर्ण अंगों वाली जीवित यहाँ कैसे दिखाई दे सकती है।

गाहा :–

तत्तो य भणइ देवो सच्चिय एसा, न होइ सुर-माया।
अवहरिय सा मए जह इहाणिया तहय निसुणेसु ।।११२।।

संस्कृत छाया :–

ततश्च भणति देवः सा चैवैषा न भवति सुरमाया।
अपहृत्य सा मया यथेहाऽऽनीता तथा च निशृणु ।।११२।।

गुजराती अनुवाद :–

त्यारे देवे कहयुं आ अेज छे पण देवमाया नथी. हुं केवी रीते तेनुं अपहरण करीने लाव्यो ते तुं सांभळ।

हिन्दी अनुवाद :–

तब देव ने कहा— यह वही है पर यह देवमाया नहीं है। मैं कैसे उसका अपहरण करके लाया वह तुम सुनो।

गाहा :–

केवलि-महिमं काउं आगच्छंतेण तुह समीवम्मि।
ओहि-न्नाणेण मए दिट्ठा तुह भारिया एसा ।।११३।।

संस्कृत छाया :–

केवलि-महिमानं कृत्वाऽऽगच्छता तव समीपे।
अवधिज्ञानेन मया दृष्टा तव भार्या एषा ।।११३।।

गुजराती अनुवाद :–

केवली महिमा करीने तारी पासे आवती वखते अवधिज्ञान थी में तारी पत्नी ने जोई।

हिन्दी अनुवाद :–

केवली महिमा कर तुम्हारे पास आते समय अवधिज्ञान से मैंने तुम्हारी पत्नी को देखा।

गाहा :–

कय-मरणज्झवसाणा तत्तो य मए विचिंतियं एयं।
गहिऊण इमं पच्छा गच्छिस्सं मित्त-पासम्मि ।।११४।।

संस्कृत छाया :–

कृत-मरणाध्यवसाया ततश्च मया विचिन्तितमेतद्।
गृहीत्वेमां पश्चात् गमिष्यामि मित्र-पार्श्वे ।।११४।।

गुजराती अनुवाद :–

मरण नी इच्छणवाळी तेणीने जाणीने में विचार्यु के अेने लई ने हुं मारा मित्र पासे जईस।

हिन्दी अनुवाद :–

मरने की इच्छावाली उसे जानकर मैंने विचार किया कि इसे लेकर मैं अपने मित्र के पास जाऊँगा।

गाहा :–

इय चिंतिय पत्तो हं गंगावत्तम्मि तम्मि नयरम्मि।
विस-वेय-विहुरियंगी दिट्ठा य मए इमा तत्थ ।।११५।।

संस्कृत छाया :–

इति चिन्तयित्वा प्राप्तोऽहं गङ्गावर्ते तस्मिन्नगरे।
विष-वेग-विधुरिताङ्गी दृष्टा च मयेयं तत्र ।।११५।।

गुजराती अनुवाद :–

आ प्रमाणे विचार करीने हुं गंगावर्त नगर मां गयो, त्यां में खाधेला झेर वाळी तेणीने जोई।

हिन्दी अनुवाद :–

ऐसा विचार कर मैं गंगावर्त नगर में गया, वहाँ मैंने उसे देखा जो जहर से व्याप्त अंग वाली थी।

गाहा :–

हंतूण मंत-सत्तिं सव्वेसिं थंभियं मए उ विसं।
तत्तो मयत्ति कलिउं मय-किच्चं तीए काऊणं ।।११६।।
नीया पेय-वणम्मी नहवाहण-परियणेण सा बाला।
चीयाए पक्खिविउं जाहे उज्जालिओ जलणो ।।११७।।
ताहे अवहरिय विसं घेत्तूण इमं समागओ इहइं।
तुज्झ समीवे ताव य एस विगप्पो महं जाओ ।।११८।।

सोउं इमीइ मरणं किं मन्ने एस कुणइ मह मित्तो ।
किं दढ-रागो अज्जवि अहवावि हु पयणुरागोत्ति ।।११९।।

संस्कृत छाया :–

हृत्वा मन्त्र-शक्तिं सर्वेषां स्तम्भितं मया तु विषम् ।
ततो मृतेति कलयित्वा मृतकृत्यं तस्याः कर्तुम् (कृत्वा) ।।११६।।
नीता प्रेतवने नभोवाहन-परिजनेन सा बाला ।
चितायां प्रक्षिप्य यदा उज्ज्वालितो ज्वलनः ।।११७।।
तदाऽपहृत्य विषं गृहत्वेमां समागत इह ।।
तव समीपे तावच्चैष विकल्पो मम जातः ।।११८।।
त्रिसिभिः कुलकम्।।
श्रुत्वाऽस्या मरणं किम्मन्ये एष करोति मम मित्रम् ।
किं दृढ़-रागोऽद्याऽप्यथवाऽपि खलु प्रतनुराग इति ।।११९।।

गुजराती अनुवाद :–

बधानी मंत्रशक्ति ने हरण करीने अने तेणीना झेर ना वेगने में रोक्यो. त्यारे ते मरी गई छे, एम मानीने अेनो मृतकार्य करवामाटे नभोवाहन ना सभ्यो ते वाळाने स्मशान मां लई गया. चितापर मूकीने अग्नि प्रगटाव्यो. त्यां तेणीना झेरने दूर करीने तेणीने लईने हुं तारी पासे आव्यो त्यारे मन मां एक विचार आव्यो के तेणीना-मरण ना समाचार सांभळी मारो मित्र शुं करशे? हजी सुधी शुं तेणीपर अेटलोज राग छे के ओछो थयो छे ते जोउं।

हिन्दी अनुवाद :–

जब सबके मन्त्र शक्तियों का हरण कर और उसके जहर के प्रभाव को रोका तब वह मर गई है, ऐसा मानकर उसका मृत-संस्कार करने के लिए नभोवाहन के लोग उसे स्मशान में ले गए। चिता पर रखकर आग लगा दी। वहाँ उसके जहर को दूरकर, उसको लेकर जब मैं तुम्हारे पास आया तो मन में एक विचार आया कि उसकी मृत्यु का समाचार सुनकर मेरा मित्र क्या कहेगा। आज तक भी तुम्हारा उसके प्रति राग उतना ही है, या कम हो गया है, मैं देखूँ।

गाहा :–

इय चिंतिऊण एसा अद्दिस्सा सुयणु! तुह मए विहिया ।
नाऊण निच्छयं ते इण्हिं पुण पयडिया भद्द! ।।१२०।।

संस्कृत छाया :–

इति चिन्तयित्वा एषाऽदृश्या सुतनो! त्वद् मया विहिता।
ज्ञात्वा निश्चयं तवेदानीं पुनः प्रकटिता भद्र! ।।१२०।।

गुजराती अनुवाद :–

आ प्रमाणे विचारीने में तेणी ने तारा माटे अदृश्य करी हती अने तारा निश्चय जाण्या पछी प्रगट करी छे।

हिन्दी अनुवाद :–

ऐसा विचार कर मैंने उसे अदृश्य कर दिया था और तुम्हारा निश्चय जानकर उसे प्रगट कर रहा हूँ।

गाहा :–

ता मा कुण आसंकं सच्चिय एसा उ कणगमालत्ति।
इय भणिए सो खयरो पहसिय-वयणो दढं जाओ ।।१२१।।

संस्कृत छाया :–

तस्माद् मा कुर्वाशङ्कां सैवैषा तु कनकमालेति।
इति भणिते स खचरः प्रहर्षित-वदनो दृढं जातः ।।१२१।।

गुजराती अनुवाद :–

अेथी तुं कोई शंका न कर. आ कनकमाला ज छे. आम जाण्या पछी ते विद्याधर खुश थयो।

हिन्दी अनुवाद :–

इसलिए तुम कोई शंका मत करो। यह कनकमाला ही है, ऐसा जानकर वह विद्याधर खुश हो गया।

गाहा :–

अह पणमिय तं देवं कयंजली भणइ चित्तवेगो सो।
अइनेहो दक्खिन्नं अहो णु ते मित्त-वच्छल्लं ।।१२२।।

संस्कृत छाया :–

अथ प्रणम्य तं देवं कृताञ्जलिर्भणति चित्रवेगः सः।
अतिस्नेहो दाक्षिण्यं अहो! नु ते मित्रवात्सल्यम् ।।१२२।।

गुजराती अनुवाद :–

अने देवने प्रणाम करीने हाथ जोड़ी ने देवने चित्रवेगे कहयुं, अहो! शुं तारो स्नेह, दाक्षिण्य अने मित्र वात्सल्य छे।

हिन्दी अनुवाद :–

और देव को प्रणाम कर हाथ जोड़कर चित्रवेग ने देव से कहा आपकी मैत्री अत्यन्त स्नेहयुक्त दाक्षिण्य एवं वात्सल्यपूर्ण है।

गाहा :–

पर-उवयार-रया इह महाणुभावा भवंति पयईए ।
अणुवकयावि परेणं वट्टंति सयावि उवयारे ।।१२३।।

संस्कृत छाया :–

परोपकाररता इह महानुभावा भवन्ति प्रकृत्या ।
अनुपकृताऽपि परेण वर्तन्ते सदाऽप्युपकारे ।।१२३।।

गुजराती अनुवाद :–

स्वभाव थी परोपकार मां लागेला महानुभावो होय छे। बीजा एमनुं कई पण काम न करे तो पण एओ परोपकार करता होय छे।

हिन्दी अनुवाद :–

महानुभाव स्वभाव से परोपकार में लगे रहते हैं। दूसरा कोई उनका कोई भी काम न करें तो भी वे परोपकार करते जाते हैं।

गाहा :–

तुमए दिन्नं जीयं मण-संतावो तुमे य निव्वविओ ।
अणह-सरीरा एसा जं तुमए मज्झ उवणीया ।।१२४।।

संस्कृत छाया :–

त्वया दत्तं जीवितं मनःसन्तापस्त्वया च निर्वापितः ।
अक्षतशरीरा एषा यत् त्वया मे उपनीता ।।१२४।।

गुजराती अनुवाद :–

ते मने जीवन आप्युं अने मारो संताप दूर कर्यो जेथी ते मने अखंड शरीरवाळी मारी पत्नी लावी आपी।

हिन्दी अनुवाद :–

तुमने मुझे जीवन दिया और मेरा दुःख दूर किया। क्योंकि मुझे अखंड शरीर वाली मेरी पत्नी लाकर मुझे दी।

गाहा :–

आउल-मणस्स पुव्विं तुमए जं किंचि मज्झ उवइट्ठं ।
सव्वं भरिय-घडस्सव तं मह पासेण वोलीणं ।।१२५।।

संस्कृत छाया :–

आकुलमनसः पूर्वं त्वया यत्किञ्चित् ममोपदिष्टम् ।
सर्वं भृत-घटस्येव तद् मम पार्श्वेन व्युत्क्रान्तम् ।।१२५।।

गुजराती अनुवाद :–

अत्यार सुधी आकुळ मनवाळा अेवा मने ते जे कई पण कहयुं ते भरेला घड़ा ऊपर थी वही जता पाणीनी जेम जतुं रहयुं।

हिन्दी अनुवाद :–

अब तक आकुल मन वाले मुझसे तुमने जो भी कहा वह भरे हुए घड़े के ऊपर से बह जाते पानी की भाँति मेरे पीछे से चला गया।

गाहा :–

तुज्झ पभावा सुर-वर! जाओ हं सत्थ-माणसो इण्हिं ।
कायव्वं जं किंचिवि संपइ आइससु तं सव्वं ।।१२६।।

संस्कृत छाया :–

तव प्रभावात् सुरवर! जातोऽहं स्वस्थमानस इदानीम् ।
कर्तव्यं यत् किञ्चिदपि सम्प्रत्यादिश तत् सर्वम् ।।१२६।।

गुजराती अनुवाद :–

हे देव! तारा प्रभाव थी हवे हुं स्वस्थ मनवाळो थयो छुं तेथी जे कई पण करवानु होय ने आदेश कर।

हिन्दी अनुवाद :–

हे देव! आपके प्रभाव से आज मैं स्वस्थ चित्त हुआ हूं। इसलिए जो कोई भी कार्य हो मुझे आदेश करें।

गाहा :–

भणियं देवेण तओ हवइ हु देवाण दंसणममोहं ।
तो भणसु भद्द! किंचिंवि जेण तयं तुह पयच्छामि ।।१२७।।

संस्कृत छाया :–

भणितं देवेन ततो भवति खलु देवानां दर्शनममोघम् ।
ततो भण भद्र! किञ्चिदपि येन तत्तुभ्यं प्रयच्छामि ।।१२७।।

गुजराती अनुवाद :–

त्यारे देवे कह्युं, देवोनुं दर्शन निष्फळ नथी जतुं तेथी तुं कई पण मांग ते बधुं हुं तने आपु.

हिन्दी अनुवाद :–

तब देव ने कहा देवों का दर्शन निष्फल नहीं जाता इसलिए तूं कुछ भी मांगो, वह सब मैं तुम्हें दूंगा।

गाहा :–

तो भणइ चित्तवेगो जइ एवं देसु मज्झ तं किंचि ।
नहवाहण-खयरो जह न सक्कए मं पराभविउं ।।१२८।।

संस्कृत छाया :–

ततो भणति चित्रवेगो यद्येवं ददस्व मह्यं तत् किञ्चिद् ।
नभोवाहन-खचरो यथा न शक्यते मां पराभवितुम् ।।१२८।।

गुजराती अनुवाद :–

त्यारे चित्रवेगे कह्युं तुं मने जे कई पण आपे ते एवुं आप के नभोवाहन विद्याधर मने हरावी न शके।

हिन्दी अनुवाद :–

तब चित्रवेग ने कहा कि आप मुझे जो भी दें मुझे इतना दीजिए कि नभोवाहन मुझे पराजित न कर सके।

गाहा :–

भणियं देवेण तओ महिला-सहियस्स पहरिओ जं सो ।
विज्जाहर-कय-मेरं विलंघिउं दप्प-वामूढो ।।१२९।।

संस्कृत छाया :–

भणितं देवेन ततो महिला-सहितस्य प्रहतो यत् सः ।
विद्याधर-कृत मेरां विलंघ्य दर्प-व्यामूढः ।।१२९।।

गुजराती अनुवाद :–

त्यारे देवे कह्युं के पत्नी साथे जतां व्यक्ति ऊपर जे कोई हुमलो करे तो विद्याधरनी करायेली मर्यादा नो उल्लंघन करीने अहंकार थी युक्त अेवो छे।

हिन्दी अनुवाद :–

तब देव ने कहा कि पत्नी के साथ जा रहे व्यक्ति पर अगर कोई हमला करता है तो वह विद्याधर की मर्यादा का उल्लंघन करता है और वह अहंकार युक्त है।

गाहा :–

तेणेव कारणेणं विज्जा-च्छेओ इमस्स संजाओ ।
ता संपइ असमत्थो भद्द! तुमं सो पराभविउं ।।१३०।।

संस्कृत छाया :–

तेनैव कारणेन विद्याच्छेदोऽस्य सञ्जातः ।
ततः सम्प्रत्यसमर्थो भद्र! त्वां स पराभवितुम् ।।१३०।।

गुजराती अनुवाद :–

तेज कारण थी पोताना विद्यानो छेद थवाथी हवे ते नभोवाहन तने हरावी शकशे नहिं।

हिन्दी अनुवाद :–

इसी कारण से अपनी विद्या का छेद होने से वह नभोवाहन तुम्हें हरा नहीं सकता।

गाहा :–

अन्नं च।

किल पुव्व-वेरिएणं अवहरिओ जाय-गरुय-रोसेण ।
तो चित्तवेग! खयराहिवस्स गेहम्मि वड्ढिहिसि ।।१३१।।
इय तइया केवलिणा भावि-भवं मज्झ साहयंतेण ।
आइट्ठं ता तुमए होयव्वं खयर-नाहेण ।।१३२।।

संस्कृत छाया :–

अन्यच्च,

किल पूर्व-वैरिणाऽपहृतो जात-गुरुरोषेण ।

ततश्चित्रवेग! खचराधिपस्य गेहे वर्धिष्यसे ।।१३१।।

इति तदा केवलिना भाविभवं मम कथयता ।

आदिष्टं तस्मात् त्वया भवितव्यं खचरनाथेन ।।१३२।। युग्मम्।।

गुजराती अनुवाद :–

वळी, पूर्वभवना वैरी वड़े द्वेष थी अपहरण करायेलो तुं हे चित्रवेग! विद्याधरना अधिपति ने घरे मोटो थईश. आवुं ते वखते केवली भगवँते मने जे कहयुं हतुं ते रीते ते कारण थी तुं विद्याधर थईश।

हिन्दी अनुवाद :–

पूर्व भव के वैरी द्वारा अपहरण कराया हुआ तूं हे चित्रवेग! विद्याधर के अधिपति के घर बड़ां होगा और उस समय केवली भगवंत ने मुझे जो कहा था उसी प्रकार, उसी कारण से तूं विद्याधर होगा।

गाहा :–

वेयड्ढ-दक्खिणाए सेढीए सयल-खयर-नाहाणं ।

सामिं करेमि संपइ तुमंति, किं एत्थ अन्नेण? ।।१३३।।

संस्कृत छाया :–

वैताढ्य-दक्षिणायां श्रेण्यां सकल-खचर-नाथानाम् ।

स्वामिनं करोमि सम्प्रति त्वमिति किमत्रान्येन? ।।१३३।।

गुजराती अनुवाद :–

वेताढ्य पर्वत नी दक्षिण श्रेणी मां बधा विद्याधरो ना नाथनो स्वामि तने हुं बनावुं छुं. पछी तारे बीजु शुं काम छे।

हिन्दी अनुवाद :–

वैताढ्य पर्वत की दक्षिण श्रेणी में स्थित समस्त विद्याधरनाथों का मालिक मैं तुम्हें बनाता हूँ, उसके बाद तुम्हें क्या काम है।

गाहा :–

मज्झ पभावाओ तुह सव्वाओ चेव खयर-विज्जाओ ।

होहिंति पढिय-सिद्धा अहियाओ अन्न-खयरेहिं ।।१३४।।

पर-विज्जाणं छेयं मंताण ओसहीण अहलत्तं ।
काहिसि इच्छाए तुमं खयराणं वयण-मत्तेणं ।।१३५।।
अइदप्पियावि खयरा आणा-निद्देस-कारिणो सव्वे ।
होहिंति विणय-पणया मज्झ पभावाओ तुह भद्द! ।।१३६।।

संस्कृत छाया :–

मम प्रभावात्तव सर्वाश्चैव खचर-विद्याः ।
भविष्यन्ति पठित-सिद्धा अधिका अन्य खचरेभ्यः ।।१३४।।
पर-विद्यानां छेदं मन्त्राणामौषधीनामफलत्वम् ।
करिष्यसीच्छया त्वं खचराणां वचन-मात्रेण ।।१३५।।
अतिदर्पिता अपि खचरा आज्ञा-निर्देश-कारिणः सर्वे ।
भविष्यन्ति विनय-प्रणता मम प्रभावात् तव भद्र! ।।१३६।।

गुजराती अनुवाद :–

मारा प्रभावथी अे विद्याधरोनी बधी विद्याओं भणवा मात्र थी सिद्ध थशे. अे तुं बीजा विद्याधरोथी अधिक थईश।

बीजानी विद्याओनो छेद करी शकीश अने तेओना मन्त्रने औषधिने पण इच्छा मात्रथी निष्फळ करी शकीश। अत्यंत अहंकारी एवा पण बधा विद्याधरो मारा प्रभाव थी तारी आज्ञाना आदेशने विनय पूर्वक करवावाळा थशे तने बधी विधा सिद्ध थशे।

हिन्दी अनुवाद :–

मेरे प्रभाव से और विद्याधरों की सभी विद्या पढ़ने मात्र से तूं दूसरे विद्याधरों से अधिक सिद्ध होगा। दूसरे की विद्याओं का छेद कर सके, और उनके मन्त्र और औषधि भी केवल चाहने मात्र से निष्फल कर सके, ऐसे अत्यन्त अहंकार युक्त सभी विद्याधर मेरे प्रभाव से तुम्हारी आज्ञा व आदेश को विनयपूर्वक पालन करने वाले होंगे। तुम्हें सभी विद्या सिद्ध होगी।

गाहा :–

ता इण्हिं गंतूणं वेयड्ढे सिद्धकूड-सिहरम्मि ।
सासय-जिण-पडिमाणं महिमं अट्ठाहिअं काउं ।।१३७।।
अब्भत्थिय धरणिंदं सव्वाओ तुज्झ खयर-विज्जाओ ।
दाऊण जहाविहिणा गच्छिस्सं ताहि स-ट्ठाणं ।।१३८।।

संस्कृत छाया :–

तस्मादिदानीं गत्वा वैताढ्ये सिद्ध-कूट-शिखरे ।
शाश्वतजिन-प्रतिमानां महिमानमष्टाह्निकं कृत्वा ।।१३७।।
अभ्यर्थ्य धरणेन्द्रं सर्वास्तुभ्यं खचर-विद्याः ।
दत्वा यथाविधिना गमिष्यामि तदा स्व-स्थानम् ।।१३८।।
युग्मम्।।

गुजराती अनुवाद :–

तेथी हमणा वैहाढ्य पर्वतना सिद्धकूट शिखर ऊपर जईने शाश्वती जिनप्रतिमाना महिमानो अट्ठाई महोत्सव करीने धरणेन्द्र ने कही ने तने विधिपूर्वक बधी विद्या आपीने पोताना स्थाने जईश.

हिन्दी अनुवाद :–

इसलिए अभी वैताढ्य पर्वत के सिद्धकूट शिखर पर जाकर शाश्वत जिन प्रतिमा की महिमा में अट्ठाई महोत्सव कर धरणेन्द्र को बताकर तुम्हें विधिपूर्वक सभी विद्या देकर अपने स्थान पर जाऊँगा।

गाहा :–

एवं सुरेण भणिओ पय-जुयलं पणमिऊण से खयरो ।
सुर-वर! महा-पसाओ एवं होउत्ति वज्जरइ ।।१३९।।

संस्कृत छाया :–

एवं सुरेण भणितो पदयुगलं प्रणम्य तस्य खचरः ।
सुरवर! महाप्रसाद एवं भवतु इति कथयति ।।१३९।।

गुजराती अनुवाद :–

अे प्रमाणे देवे कहयुं त्यारे विद्याधर देव ना पग मां पड़ी ने प्रणाम करीने आपे घणी कृपा करी अेम कहे छे।

हिन्दी अनुवाद :–

ऐसा देव के कहने के बाद विद्याधर देव के चरणों में गिरकर प्रणाम करते हुए 'आपने मुझ पर बहुत कृपा की' ऐसा कहा।

गाहा :–

बहु-माण-जुयं तत्तो आभासित्ता ममं तु सो खयरो ।
धणदेव! मह समप्पिय मणिमेयं गुरु-पमोएण ।।१४०।।

देवेण तेण सहिओ सह महिलाए, नहम्मि उप्पइओ।
अहयंपि तओ तत्तो समागओ नियय-ठाणम्मि ।।१४१।।

संस्कृत छाया :–

बहुमानयुक्तं ततोऽऽभाष्य माम् तु सः खचरः।
धनदेव! मम समर्प्य मणिमेतं गुरुप्रमोदेन ।।१४०।।
देवेन तेन सहितः सह महिलया नभस्युत्पतितः।
अहमपि ततस्ततः समागतो निज-स्थाने ।।१४१।। युग्मम् ।।

गुजराती अनुवाद :–

बहुमान पूर्वक ते विद्याधर, आ प्रमाणे मने कहीने हे धनदेव! अत्यन्त खुशीपूर्वक आ मणि आपीने ते देव, पत्नी सहित विद्याधरनी साथे आकाश मां उड्यो अने हुं पण मारा स्थान मां आव्यो।

हिन्दी अनुवाद :–

बहुमान पूर्वक वो विद्याधर, ऐसा कहकर हे धनदेव! अत्यन्त खुशीपूर्वक यह मणि देकर वो देव, पत्नी सहित उस विद्याधर के साथ आकाश में उड़ गया और मैं भी अपने स्थान में आ गया।

गाहा :–

ता भो धणदेव! मए एएण कमेण पाविओ एस।
बहु-पुन्न-पावणिज्जो मणी मणाणंद-संजणणो ।।१४२।।

संस्कृत छाया :–

तस्माद् मो धनदेव! मया एतेन क्रमेण प्राप्त एषः।
बहुपुण्य प्रापणीयो मणिर्मन आनन्द-सञ्जननः ।।१४२।।

गुजराती अनुवाद :–

हे धनदेव! में तने आ क्रम थी प्राप्त थयेलो. खूब पुन्यथी प्राप्त थाय एवो मणि जे मनमां आनन्द ने उत्पन्न करनारो छे। ते,

हिन्दी अनुवाद :–

हे धनदेव! मैं तुम्हें इस क्रम से प्राप्त हुए, खूब पुण्य से प्राप्त मणि मन में आनन्द उत्पन्न करने वाली है– वह।

गाहा :–

दिय-लोय-समुप्पन्नो पवरो एसो मणी महाभाग! ।
निस्सेस-दोस-समणो विसेसओ विस-समूहस्स ।।१४३।।

संस्कृत छाया :–

दिव्यलोक-समुत्पन्नः प्रवर एष मणिर्महाभाग ।
निःशेष-दोष-शमनो विशेषतो विष-समूहस्य ।।१४३।।

गुजराती अनुवाद :–

दिव्य लोक मां उत्पन्न थयेलो छे। हे महाभाग्यशाली आ श्रेष्ठमणि बधा दोषोने शांत करनारो छे. आमा विशेषथी झेर ने शांत करनारो छे।

हिन्दी अनुवाद :–

दिव्य लोक में उत्पन्न हुई है। हे महाभाग्यशाली! यह श्रेष्ठ मणि समस्त दोषों को शान्त करने वाली है। यह विशेष रूप से जहर को शान्त करने वाली है।

गाहा :–

ता धणदेव! महायस! गेण्हसु एयं तुमं मणिं दिव्वं ।
सयल-गुणेग-निहाणं मह अणुरोहेण, किं बहुणा ।।१४४।।

संस्कृत छाया :–

तस्मात् धनदेव! महायश! गृहाण एतं त्वं मणिं दिव्यम् ।
सकल-गुणैक-निधानं ममाऽनुरोधेन, किं बहुना? ।।१४४।।

गुजराती अनुवाद :–

तेथी हें धनदेव! हे महायशस्वी तुं आ दिव्यमणी जे बधा गुणों नु निधान छे तेने मारा अनुरोध थी ग्रहण कर।

हिन्दी अनुवाद :–

इसलिए हे धनदेव! हे महायशस्वी! तुम यह मणि जो समस्त गुणों की खान है, मेरे अनुरोध पर इसे ग्रहण करो।

गाहा :–

एयं निसम्म वयणं कुसलो भणिईसु भणइ धणदेवो ।
भो राय-सुय! जमेयं तुमए सह दंसणं मज्झ ।।१४५।।

जं च इमं अच्चंतं वयणं सब्भाव-गब्भिणं भद्द! ।
तं चेव मज्झ मणि-सय-सहस्स-लक्खाण अब्भहियं ।।१४६।।

संस्कृत छाया :–

एतद् निशम्य वचनं कुशलो भणितिषु भणति धनदेवः ।
भो राजसुत! यदेतं त्वया सह दर्शनं मम ।।१४५।।
यच्चेदमत्यन्तं वचनं सद्भावगर्भितं भद्र! ।
तच्चैव मम मणि-शत-सहस्र-लक्षेभ्योऽभ्यधिकम् ।।१४६।। युग्मम्।।

गुजराती अनुवाद :–

आ सांभणी ने बोलवा मां कुशळ अेवा धनदेवे कह्युं, हे राजपुत्र, जे मने तमारुं दर्शन थयुं, अेज अत्यन्त भावभीना वचन, वाणी ते मारे माटे हजारो लाखों मणीओ करतां पण वधु छे।

हिन्दी अनुवाद :–

ऐसा सुनकर बोलने में अत्यन्त कुशल धनदेव ने कहा, 'हे राजपुत्र, हमें जो तुम्हारा दर्शन हुआ और तुम्हारे अत्यन्त भावभीने वचन सुने वह मेरे लिए हजारों, लाखों मणियों से भी अधिक है।

गाहा :–

अह भणइ सुप्पइट्ठो निसम्म धणदेव-भासियं वयणं ।
अत्थि य एयं धणदेव! किंतु अहयंपि एयम्मि ।।१४७।।
गहिए दिव्व-मणिम्मी तुमए मन्ने कयत्थमप्पाणं ।
ता भो! मह धिइ-हेउं किज्जउ मणि-गहणमवियप्पं ।।१४८।।

संस्कृत छाया :–

अथ भणति सुप्रतिष्ठो निशम्य धनदेवभाषितं वचनम् ।
अस्ति चैतद् धनदेव! किन्तु अहमप्येतस्मिन् ।।१४७।।
गृहीते दिव्यमणौ त्वया मन्ये कृतार्थमात्मानम् ।
तस्माद् भो! मम धृतिहेतुं क्रियतां मणिग्रहणमविकल्पम् ।।१४८।। युग्मम्।।

गुजराती अनुवाद :–

हवे धनदेव नी वात सांभणी ने सुप्रतिष्ठ बोल्यो हे धनदेव, तमारी वात बराबर छे पण साथे-साथे तमे आ दिव्य मणी स्वीकार्यो तो हुं मारी जातने कृतार्थ मानीश। तेथी तमे मारी शांतिमाटे पण आ मणिने ग्रहण करो.

हिन्दी अनुवाद :–

अब धनदेव की बात सुनकर सुप्रतिष्ठ ने कहा, हे धनदेव! तुम्हारी बात ठीक है किन्तु साथ-साथ यदि तुम यह मणि स्वीकार कर लो तो इसके लिए मैं अपनी जात को कृतार्थ मानूंगा। इसलिए तुम हमारी शान्ति के लिए यह मणि ग्रहण करो।

गाहा :–

नाउं अइनिब्बंधं गहिओ विणिएण सो मणी पवरो ।
अह भणइ सुप्पइट्ठो पुणरवि धणदेवमासज्ज ।।१४९।।

संस्कृत छाया :–

ज्ञात्वाऽतिनिर्बन्धं गृहीतो विनीतेन स मणि-र्प्रवरः ।
अथ भणति सुप्रतिष्ठः पुनरपि धनदेवमासाद्य ।।१४९।।

गुजराती अनुवाद :–

अत्यन्त आग्रह जाणीने हृदयपूर्वक धनदेवे मणीनो स्वीकार कर्यो त्यारे सुप्रतिष्ठे फरीथी कह्युं के...

हिन्दी अनुवाद :–

सुप्रतिष्ठ का अत्यन्त आग्रह जानकर धनदेव ने वह मणि स्वीकार कर ली तब सुप्रतिष्ठ ने फिर कहा कि—

गाहा :–

गंतूण कुसग्गपुरे नियत्तमाणेण निय-पुराभिमुहं ।
आगंतव्वं इहइं अम्हाण अणुग्गहट्ठाए ।।१५०।।

संस्कृत छाया :–

गत्वा कुशाग्रपुरे निवर्तमानेन निजपुराभिमुखम् ।
आगन्तव्यमिहास्माकमनुग्रहार्थे ।।१५०।।

गुजराती अनुवाद :–

कुशाग्रपुर नगर मां जईने पाछा... तमारा ग्राम जतां अमारा उपर अनुग्रह करवा अहीं पधारवुं।

हिन्दी अनुवाद :–

कुशाग्रपुर नगर जाकर वापसी में अपने गाँव जाते समय हमारे ऊपर कृपा कर यहीं पधारिएगा।

गाहा :–

भणियं धणदेवेणं होउ अविग्घेण ताव समओ सो ।
जं एसो च्चिय मग्गो नियत्तमाणाणमम्हाण ।।१५१।।

संस्कृत छाया :–

भणितं धनदेवेन भवत्वविघ्नेन तावत् समयः सः ।
यदेष एव मार्गो निवर्तमानानामस्माकम् ।।१५१।।

गुजराती अनुवाद :–

धनदेवे कहयुं भले कोई अंतराय नहि नड़े तो वळतां आज मार्गे आवशुं त्यारे समय हशे तो जोईशुं।

हिन्दी अनुवाद :–

धनदेव ने कहा कि यदि कोई अन्तराय नहीं आया तो वापसी में इसी रास्ते से आऊंगा, और तब समय रहेगा तो देखूंगा।

गाहा :–

एवं कय-संभासो रयणिं गमिऊण तस्स गेहम्मि ।
पत्ते पभाय-समए संवूढे सयल-सत्थम्मि ।।१५२।।
तव्वेल-समुचियं सो कायव्वं काउं निग्गओ तत्तो ।
निय-परियण-सहिएणं पल्ली-वइणाऽणुगम्मंतो ।।१५३।।

संस्कृत छाया :–

एवं कृतसम्भाषः रजनीं गमयित्वा तस्य गेहे ।
प्राप्ते प्रभातसमये संव्यूढे सकल-सार्थे ।।१५२।।
तद्वेल-समुचितं स कर्तव्यं कृत्वा निर्गतस्ततः ।
निज-परिजन-सहितेन पल्लीपतिनाऽनुगम्यमानः ।।१५३।।युग्मम्।।

गुजराती अनुवाद :–

आ प्रमाणे वात करीने रात्रि रुना घरे पसार करीने सवारे सहु सार्थनी साथे ते समय नु उचित कार्य करीने पोताना परिजन सहित त्यांथी निकल्या, त्यारे पल्लीपतिओ तेमने विदाय आपी।

हिन्दी अनुवाद :–

इस प्रकार कहकर रात में उनके घर रुककर प्रात: सभी सार्थ के साथ भी उचित कार्य पूर्ण कर अपने परिजनों के साथ वहाँ से निकले, उस समय पल्लीपति ने उन्हें विदायी दी।

गाहा :–

कहकहवि नियत्तेउं ससोय-वयणं तु पल्लीनाहं तं ।
सत्थेण समं चलिओ धणदेवो वेसरारूढो ।।१५४।।

संस्कृत छाया :–

कथं कथमपि निवर्त्य सशोक-वदनं तु पल्लीनाथं तम् ।
सार्थेन समं चलितो धनदेवो वेसरारूढ़: ।।१५४।।

गुजराती अनुवाद :–

गमे तेम शोकपूर्वक पल्लीनाथ ने पाछा मोकली ने धनदेव (खच्चर). ऊपर चड़ी ने सार्थनी साथे चाल्यो।

हिन्दी अनुवाद :–

जैसे भी शोकपूर्वक पल्लीपति को पीछे छोड़कर धनदेव खच्चर पर चढ़ कर सार्थ के साथ चल दिए।

गाहा :–

कालेण य संपत्तो कुसग्गनयरम्मि वणिय-संजुत्तो ।
घेत्तुं महग्घ-मुल्लं दरिसणयं नर-वइ-समीवे ।।१५५।।
संपत्तो नरवाहण-रन्ना बहु मन्निओ तओ तेण ।
सुंकवइ सयल-भंडं पंच-उलं संक्खिणं काउं ।।१५६।।

संस्कृत छाया :–

कालेन च सम्प्राप्त: कुशाग्रनगरे वणिक्संयुक्त: ।
गृहीत्वा महार्ध्यमूल्यं दर्शनीयं नरपति-समीपे ।।१५५।।

सम्प्राप्तो नरवाहनराज्ञा बहुमानितस्तस्तेन ।

शुल्कयति सकलभाण्डं पञ्चकुलं साक्षिणं कृत्वा ।।१५६।।

गुजराती अनुवाद :–

समय वड़े कुशाग्रनगर मां पहोंचीने बीजा वेपारीओ साथे कीमती नजराणुं लई ने राजा पासे गया। राजाए तेमनुं बहुमान कर्युं अने पंचनी साक्षी करी कर लीधो।

हिन्दी अनुवाद :–

समय से कुशाग्रनगर पहुँचकर कीमती नजराना (भेंट) साथ लेकर राजा के पास गये। राजा ने उनका बहुमान किया और पंच की उपस्थिति में कर लीया।

गाहा :–

सागर-सेट्ठिस्स तओ भवणेसु भाडएण गहिएसु ।

उत्तारियं तु भंडं सव्वंपि निउत्त-पुरिसेहिं ।।१५७।।

संस्कृत छाया :–

सागरश्रेष्ठिनस्ततो भवनेषु भाटकेन गृहीतेषु ।

उत्तारितं तु भाण्डं सर्वमपि नियुक्तपुरुषैः ।।१५७।।

गुजराती अनुवाद :–

सागर शेठ नुं मकान भाड़े लईने पोताना माणसो वड़े बधो सामान उतार्यो।

हिन्दी अनुवाद :–

सागर शेठ का मकान भाड़े पर लेकर अपने आदमियों के द्वारा सारा सामान उतारा।

गाहा :–

उत्तरइ य पइदियहं भंडं तह घेप्पए य पडिभंडं ।

एवं कइवि मासा वोलीणा तत्थ नयरम्मि ।।१५८।।

संस्कृत छाया :–

उत्तरति च प्रतिदिवसं भाण्डं तथा गृह्यते च प्रतिभाण्डम् ।

एवञ्च कत्यपि मासा अतिक्रान्तास्तत्र नगरे ।।१५८।।

गुजराती अनुवाद :–

हर रोज सामान आवे छे ने जाय छे. आम ते नगरमां घणा महीना पसार थई गया।

हिन्दी अनुवाद :–

प्रतिदिन सामान आता है और जाता है। इस तरह नगर में कई महीने रहे।

गाहा :–

सागर सेट्ठि-सुएणं सिरिदत्तेण समं तु एयस्स ।
संजाया गुरु-पीई संववहारं करेंतस्स ।।१५९।।

संस्कृत छाया :–

सागरश्रेष्ठिसुतेन श्रीदत्तेन समन्तु एतस्य ।
सञ्जाता गुरु-प्रीतिः संव्यवहारं कुर्वतः ।।१५९।।

गुजराती अनुवाद :–

सागर शेठ ना पुत्र श्रीदत्तनी साथे वेपार करतां धनदेव ने तेनी साथे गाढ मैत्री थई गयी।

हिन्दी अनुवाद :–

सागर शेठ के पुत्र श्रीदत्त के साथ व्यापार करते करते धनदेवकी उसके साथ प्रगाढ़ मित्रता हो गयी।

गाहा :–

अह अन्नया य नीओ नियय-गिहे भोयणस्स कज्जेण ।
महया उवरोहेणं सिरिदत्तेणं तु धणदेवो ।।१६०।।

संस्कृत छाया :–

अथान्यदा च नीतो निजकगृहे भोजनस्य कार्येण ।
महतोपरोधेन श्रीदत्तेन तु धनदेवः ।।१६०।।

गुजराती अनुवाद :–

एक दिवस श्रीदत्त खूबज आग्रह करीने धनदेव ने पोताना त्यां जमवा लई गयो।

हिन्दी अनुवाद :–

एक दिन श्रीदत्त खूब आग्रह कर धनदेव को अपने यहाँ भोजन को ले गया।

गाहा :–

तत्थ य गएण दिट्ठा सिरिकंता पवर-रूव-संपन्ना।
भगिणी सिरिदत्तस्स उ कन्ना नव-जोव्वणारंभा ।।१६१।।

संस्कृत छाया :–

तत्र च गतेन दृष्टा श्रीकान्ता प्रवर-रूप-सम्पन्ना।
भगिनी श्रीदत्तस्य तु कन्या नवयौवनारम्भा ।।१६१।।

गुजराती अनुवाद :–

त्यां धनदेव श्रीदत्तनी बहेन जे अत्यन्त रूपाळी अने यौवन वाळी हती ते श्रीकान्ताने जोई।

हिन्दी अनुवाद :–

वहाँ धनदेव ने श्रीदत्त की अत्यन्त रूप तथा यौवन सम्पन्न बहन श्रीकान्ता को देखा।

गाहा :–

सातालियंट-हत्था वीएंती भोयणं करेंतेण।
सच्चविया पच्चंगं अब्भुववन्नो तओ एसो ।।१६२।।

संस्कृत छाया :–

सा तालवृन्तहस्ता वीजयन्ती भोजनं कुर्वता।
दृष्टा प्रत्यङ्गमभ्युपपन्नस्तत एषः ।।१६२।।

गुजराती अनुवाद :–

तेणी ताड़वृक्षनां पंखाथी भोजन करतां अेवा धनदेवने पवन नांखती हती त्यारे धनदेव तेणीने जोईने रागवाळो थयो।

हिन्दी अनुवाद :–

जब वह ताड़ वृक्ष के पंखे से भोजन करते हुए धनदेव को पंखा झल रही थी तब धनदेव उसे देखकर उसके प्रति प्रेम वाला हो गया।

गाहा :–

तीएवि ससिणेहं अवंग-दिट्ठीए पुलइओ एसो ।
अह चिंतइ धणदेवो तीए रूवेण अक्खित्तो ।।१६३।।

संस्कृत छाया :–

तयाऽपि सस्नेहमपाङ्गदृष्ट्या दृष्ट एषः ।
अथ चिन्तयति धनदेवस्तस्या रूपेणाऽऽक्षिप्तः ।।१६३।।

गुजराती अनुवाद :–

तेणीअे पण स्नेहपूर्वक वांकी नजरे थी धनदेव ने जोयो. हवे धनदेव. तेना रूपमां खेंचायो अने विचारे छे।

हिन्दी अनुवाद :–

उसने भी धनदेव को तिरछी नजर से देखा। उसके रूप से आकर्षित धनदेव विचार करते हैं।

गाहा :–

जइ ताव इमा कन्ना, देंति य जइ मे विमग्गिया एए ।
ता होज्ज मह कयत्थो दइयाए इमाए मणुय-भवो ।।१६४।।

संस्कृत छाया :–

यदि तावदेषा कन्या ददाति च यदि माम् विमार्गितैते ।
तदा भवेद् मम कृतार्थो दयितयाऽनया मनुजभवः ।।१६४।।

गुजराती अनुवाद :–

जो मांगवाथी मने आ कन्या मळे तो आवी प्रिया वड़े मारो मनुष्य भव कृतार्थ थाय।

हिन्दी अनुवाद :–

यदि मांगने से यह कन्या मुझे प्राप्त हो जाय तो पत्नी के रूप में इसे पाकर मेरा मनुष्य भव कृतार्थ हो जाय।

गाहा :–

कह होज्ज मज्झ एसा मग्गामि सयंपि अहव अन्नेण ।
जइ दाहिंति न मज्झं विमग्गिया, होज्ज लहुयत्तं ।।१६५।।

संस्कृत छाया :–

कथं भवेत् मम एषा? मार्गयामि स्वयमप्यथवाऽन्येन? ।
यदि दास्यन्ति न, माम विमार्गिता भवेद् लघुत्वम् ।।१६५

गुजराती अनुवाद :–

हवे हुं जो स्वयं अेणीने मांगु के बीजा द्वारा मांगु पण जो मने न मळे के न आपे तो माछं लाघव पण थाय।

हिन्दी अनुवाद :–

अब मैं इसे मांगू या दूसरे द्वारा मंगवावुं किन्तु यदि यह मुझे न मिले। या वह मुझे न दे तो मेरा लाघव (छोटापन) होगा।

गाहा :–

अहवा समाण-जाई धणवंतो वसण-वज्जिओ तह य ।
एसावि जोव्वण-त्था तम्हा दाहिंति मह एए ।।१६६।।

संस्कृत छाया :–

अथवा समानजाति-धनवान् व्यसन-वर्जितस्तथा च ।
एषाऽपि यौवनस्था तस्माद् दास्यन्ति ममैते ।।१६६।।

गुजराती अनुवाद :–

अथवा तो समान जाति, धन, व्यसन रहित पणुं तथा यौवन आ बधुं सरखे सरखुं होवा थी ते मने आपशे।

हिन्दी अनुवाद :–

अथवा समान जाति, धन, तथा व्यसन रहित (होने से) तथा यौवन में बराबर-बराबर होने से वह मुझे दे सकता है।

गाहा :–

एवं विचिंतयंतो काऊणं भोयणं तु धणदेवो ।
सिरिदत्तेण विइन्ने तंबोल-विलेवणाइम्मि ।।१६७।।
गेहाओ नीहरिओ गंतूणं नियय-वास-ठाणम्मि ।
सिरिकंता-हय-हियओ पासुत्तो पवर-सयणीए ।।१६८।।

संस्कृत छाया :–

एवं विचिन्तयन् कृत्वा भोजनं तु धनदेवः ।
श्रीदत्तेन वितीर्णे ताम्बूल-विलेपनादौ ।।१६७।।
गेहाद् निःसृतो गत्वा निजवासस्थाने ।
श्रीकान्ता-हृत-हृदयः प्रसुप्तः प्रवर-शयनीये ।।१६८।। युग्मम्।।

गुजराती अनुवाद :–

आम विचार करतां धनदेव ने भोजन कर्या पछी श्रीदत्ते पान-बीडुं अने अत्तर आप्युं. पछी ते घरमांथी नीकळी ने पोताना घरे, श्रीकान्ताअे हरीलीधुं छे हृदय जेनु, अेवो ते धनदेव पोतानी पथारीमां सूतो।

हिन्दी अनुवाद :–

यह विचार करता हुआ धनदेव को भोजन करने के बाद श्रीदत्त ने उसे पान-बीड़ा और सुगन्धित इत्र भेंट की। बाद में वहाँ से निकलकर अपने घर आकर श्रीकान्ता ने जिसका दिल हर लिया है, ऐसा धनदेव अपने बिस्तरे में सो गया।

गाहा :–

एत्तो य मयण-वसगा सिरिकंता रणरणेण अभिभूया ।
गंतूण गिहुज्जाणे पासुत्ता कयलि-गेहम्मि ।।१६९।।

संस्कृत छाया :–

इतश्च मदनवशगा श्रीकान्ता रणरणेनाऽभिभूता ।
गत्वा गृहोद्याने प्रसुप्ता कदलि-गेहे ।।१६९।।

गुजराती अनुवाद :–

आ बाजु श्रीकान्ता काम ने वश थयेली अेवी धनदेव तरफ उत्कंठित थयेली पोताना घरना बगीचामां केळानी वाड़ी मां सुई गयी।

हिन्दी अनुवाद :–

दूसरी तरफ काम के वशीभूत तथा धनदेव की तरफ आकर्षित हुई श्रीकान्ता अपने घर के बगीचे की केले की वाड़ी में सो गयी।

गाहा :–

तत्थ य वक्खित्त-मणा कसिण-भुयंगेण बाहु-मूलम्मि ।
दट्ठा दट्ठूण अहिं अईव-भय-वेविर-सरीरा ।।१७०।।

आगम्म माउ-मूले रुयमाणी भणइ वेयण-परट्ठा ।
अम्मो! खद्धा खद्धा अहयं गुरु-कसिण-सप्पेण ।।१७१।।

संस्कृत छाया :–

तत्र च व्याक्षिप्तमनाः कृष्णभुजङ्गेन बाहुमूले ।
दष्टा, दृष्ट्वाऽहिमतीवभय-वेपनशील-शरीरा ।।१७०।।
आगम्य मातृमूले रुदन्ती भणति वेदनपरार्था ।
अम्बे! खादिता-खादिताऽहं गुरु-कृष्णसर्पेण ।।१७१।। युग्मम् ।।

गुजराती अनुवाद :–

त्यां एक काळो सांप तेणीने (खांधा ऊपर) दंश आप्यो. ते जोईने कांपता शरीर वाळी ते रोती रोती दर्द नी मारी मां पासे आवीने बोलवा लागी मने विशालकाय काळा सांपे डंस दीधो।

हिन्दी अनुवाद :–

तभी वहाँ एक काला सांप उसे (बांह के ऊपर) डंस लिया। यह देखकर कांपती शरीर व दर्द से कराहने वाली वह रोती रोती अपने मां के पास आई और बोली मुझे विशालकाय काले सांप ने काट लिया है।

गाहा :–

पेलव-सत्तत्तणओ उक्कडयाए य विस-वियारस्स ।
वेयणाए पभूयत्ता सभयत्ता इत्थि-भावस्स ।।१७२।।

संस्कृत छाया :–

पेलवशवत्वात् उत्कटतया च विषविकारस्य ।
वेदनायाः प्रभूतत्वात् सभयत्वात् स्त्रीभावस्य ।।१७२।।

गुजराती अनुवाद :–

अत्यन्त उत्कट झेर ने कारणे खूब वेदना थवाथी तेमां पाछो स्त्रीनो स्वभाव अने सभय होवा थी.

हिन्दी अनुवाद :–

अत्यन्त तीव्र जहर के कारण अधिक कष्ट होने से और उसमें भी स्त्री स्वभाव से सुकुमार और डरपोक होने से।

गाहा :–

मीलिय लोयण-जुयलं नीसाहारा धसत्ति धरणीए ।
विहलंधला निवडिया जणणीए पेच्छमाणीए ।।१७३।।

संस्कृत छाया :–

मीलित-लोचनयुगलं निःसाधारात् धसिति धरण्याम् ।
विह्वलाङ्गी निपतिता जनन्यां प्रेक्षमाणायां ।।१७३।।

गुजराती अनुवाद :–

आँख बिडाई जवाथी आधार वगरनी ते विह्वल थयेली माती सामे धरती पर पडी।

हिन्दी अनुवाद :–

जहर के प्रभाव के कारण दोनों आँखें बन्द हो जाने से दुःख से विह्वल हुई वह जैसे किसी बिना आधार के वह धरती पर गिर पड़ी।

गाहा :–

तं दट्ठुं सिरिमइणा सागर-सेट्ठी तहेव सिरिदत्तो ।
तह सयल-परियणो सो सहसत्ति समाउलीभूओ ।।१७४।।

संस्कृत छाया :–

तां दृष्ट्वा श्रीमत्या (श्रीमती) सागरश्रेष्ठी तथैव श्रीदत्तः ।
तथा सकलपरिजनः स सहसेति समाकुलीभूतः ।।१७४।।

गुजराती अनुवाद :–

तेणीने जोई ने श्रीमतीओ सागर शेठ श्रीदत्त अने बीजा परिजनोने बोलाव्या जे बधा आकुळ व्याकुळ थया।

हिन्दी अनुवाद :–

उसे देखकर श्रीदत्त की पत्नी ने सागर शेठ और दूसरे परिजनों को बुलाया. वे सभी यह देखकर आकुला-व्याकुल हो गए।

गाहा :–

ताहे बहु-गारुडिया हक्कारिज्जंति मंत-तंत-विऊ ।
कीरंति मंत-जावा तह वट्टिज्जंती मूलीओ ।।१७५।।

संस्कृत छाया :–

तदा बहु गारूडिका आकार्यन्ति मन्त्र-तन्त्रविद्वांसः ।
क्रियन्ते मन्त्र-जापास्तथा वृत्यन्ते मूलयः ।।१७५।।

गुजराती अनुवाद :–

त्यारे घणा जादूगरो मंत्र-तंत्र ने जाणनारा बधाने बोलावाया अने मंत्र जप कराव्या अने जड़ी बूटी वाटवा लाग्या।

हिन्दी अनुवाद :–

तभी बहुत से तंत्र-मन्त्र के जानकार, तान्त्रिक को बुलाकर मन्त्र का जाप करवाया और जड़ी-बूटी घिसने लगे।

गाहा :–

धारेंति धारणाओ केवि हु कन्नम्मि दिंति से जावं ।
कलुणं विलवइ जणणी संधीरइ से पिया एवं ।।१७६।।

संस्कृत छाया :–

धारयन्ति धारणाः केऽपि खलु कर्णे ददति तस्या जापम् ।
करुणं विलपति जननी सन्धीरयति तस्याः पिता एवम् ।।१७६।।

गुजराती अनुवाद :–

धारणा-मान ताओ करवा लाग्या, कानमां मंत्र बोलवा लाग्या. मां विलाप करवा लागी त्यारे पिता ओने शांत करे छे।

हिन्दी अनुवाद :–

मन्नत करने लगे। कान में मन्त्र बोलने लगे। मां विलाप करने लगी तो पिता उसे शान्त करते हैं।

गाहा :–

सुंदरि! मा कुण सोयं एवं नेमित्तियं तयं वयणं ।
संपइ पयडीहोही दइए! जामाउओ तुज्झ ।।१७७।।

संस्कृत छाया :–

सुन्दरि! मा कुरु शोकमेतन्नैमित्तिकं तद् वचनम् ।
सम्प्रति प्रकटीभविष्यति दयिते! जामातृकस्तव ।।१७७।।

गुजराती अनुवाद :–

त्यां आश्वासन आपेछे. निमित्तिया सज कह्युं हतुं ते प्रमाणे हे प्रियतमा! हवे तारो जमाई प्रगट थशे तुं शोक न कर।

हिन्दी अनुवाद :–

वे आश्वासन देते हैं, जैसा ज्योतिषियों ने कहा था उसके अनुसार हे प्रियतमा! अभी तुम्हारा दामाद प्रकट होगा, तूं शोक न कर।

गाहा :–

अविसंवाई जं सो सुमई नेमित्तिओ तहा सुयणु! ।
कमलावईए सव्वं निव्वडियं तेण आइट्ठं ।।१७८।।

संस्कृत छाया :–

अविसंवादी यत् स सुमति नैमित्तिकस्तथा सुतनो! ।
कमलवत्याः सर्वं निर्वृत्तं तेनाऽऽदिष्टम् ।।१७८।।

गुजराती अनुवाद :–

सुमति निमित्यानी वाणी खोटी पड़ती नथी। कमलावती राणीनो बधो वृत्तान्त तेणे कहयो तेमज थयो।

हिन्दी अनुवाद :–

सुमति ज्योतिषी का वचन कभी झूठा नहीं होता। कमलावती रानी के विषय में सम्पूर्ण वृत्तान्त जैसा उन्होंने कहा, वैसा ही हुआ।

गाहा :–

एवं च वट्टमाणे जाहे न चइंति तत्थ गारुडिया ।
सव्वायर-लग्गावि हु विस-वियणं से नियत्तेउं ।।१७९।।

संस्कृत छाया :–

एवञ्च वर्तमाने यदा न शक्नुवन्ति तत्र गारुडिकाः ।
सर्वादरलग्नाऽपि खलु विषवेदनां तस्या निवर्तितुम् ।।१७९।।

गुजराती अनुवाद :–

आ प्रमाणे ज्यारे गारुडिको द्वारा कोईपण प्रकारे झेरनी वेदना दूर न करी शकाई त्यारे...

हिन्दी अनुवाद :–

इस प्रकार जब सभी प्रकार से प्रयास करने पर किसी भी प्रकार जहर की वेदना दूर नहीं हुई तब–

गाहा :–

तत्तो तीए विसन्नो सव्वोवि हु परियणो पिया भाया।
चिंतेंति य किं होही अलियं नेमित्तियाइट्ठं? ।।१८०।।

संस्कृत छाया :–

ततस्तस्या विषण्णः सर्वोऽपि खलु परिजनः पिता भ्राता।
चिन्तयन्ति च किं भविष्यत्यलीकं नैमित्तिकाऽऽदिष्टम् ।।१८०।।

गुजराती अनुवाद :–

तेणीनो आखो परिवार पिता, भाई विचारवा लाग्या के शुं निमित्तिया नु कहेलुं खोटु पड़शे?

हिन्दी अनुवाद :–

उसका पूरा परिवार पिता, भाई विचारने लगे कि क्या ज्योतिषी का कहा हुआ झूठा हो जायेगा?

गाहा :–

पुणरवि य तम्मि नयरे डिंडिम-सद्देण सव्व-गारुडिया।
वाहरिया न य केणवि उट्ठविया सप्प-दट्ठा सा ।।१८१।।

संस्कृत छाया :–

पुनरपि च तस्मिन्नगरे डिण्डिमशब्देन सर्व-गारुडिकाः।
व्याहृता न च केनाऽप्युत्थापिता सर्पदष्टा सा ।।१८१।।

गुजराती अनुवाद :–

फरीथी ओ नगर मां ढंढेरा वड़े बधा गाहडिको ने बोलाववा मां आव्या तो पण श्रीकान्ता ऊभी थई नहीं।

हिन्दी अनुवाद :–

फिर से नगर के सभी गारुडिको को बुलाया गया तो भी श्रीकान्ता उठकर ठीक नहीं हो सकी।

गाहा :–

एत्थंतरम्मि केणवि पओययेणं समागओ तत्थ ।
धणदेवो अह पेच्छइ समाउलं परियणं सव्वं ।।१८२।।

संस्कृत छाया :–

अत्रान्तरे केनापि प्रयोजनेन समागतस्तत्र ।
धनदेवोऽथ प्रेक्षते समाकुलं परिजनं सर्वम् ।।१८२।।

गुजराती अनुवाद :–

એટલીવારે માં કોઈ કારણ થી ધનદેવ ત્યાં આવ્યો અને બધા લોકોને આકૂળ વ્યાકૂળ જોયા।

हिन्दी अनुवाद :–

इतने में किसी कारण से धनदेव वहाँ आया और लोगों को आकुल-व्याकुल देखा।

गाहा :–

अह दट्ठुं सिरिदत्तं पुच्छइ किं मित्त! आउला तुब्भे? ।
दीसह विद्दाण-मुहा, अह सिरिदत्तो इमं भणइ ।।१८३।।

संस्कृत छाया :–

अथ दृष्ट्वा श्रीदत्तं पृच्छति किं मित्र! आकुला यूयम् ।
दृश्यध्वं विद्राणमुखाः, अथ श्रीदत्त इदं भणति ।।१८३।।

गुजराती अनुवाद :–

જોઈને શ્રીદત્ત ને પૂછ્યું કે મિત્ર તમે આકૂળ વ્યાકૂળ (દેખાઓ) છો અને ઉદાસ છો. ત્યારે શ્રીદત્તે કહ્યું કે...

हिन्दी अनुवाद :–

देखकर श्रीदत्त से पूछा कि मित्र तुम क्यों आकुल-व्याकुल और उदास हो तब श्रीदत्त ने कहा...

गाहा :–

सिरिकंता मह भगिणी कन्ना सप्पेण अज्ज दट्ठत्ति ।
न उ जीवावइ कोवि हु तेणम्हे आउला मित्त! ।।१८४।।
अन्नं च।
नेमित्तिएण पुव्वं आइट्ठं आसि सप्प-डसियं जो ।

उज्जीविस्सइ एयं होही एयाए सो भत्ता ।।१८५।।

संस्कृत छाया :–

श्रीकान्ता मम भगिनी कन्या सर्पेणाऽद्य दष्टेति ।
न तु जीवयति कोऽपि खलु तेन वयमाकुला मित्रं! ।।१८४।। अन्यच्च।
नैमित्तिकेन पूर्वमादिष्टमासीत् सर्पदष्टां यः ।
उज्जीविष्यति एतां भविष्यति एतस्याः स भर्ता ।।१८५।।

गुजराती अनुवाद :–

श्रीकान्ता मारी बेन सांप द्वारा दंशाई छे. कोई तेने बचावी नथी शक्यु माटे हे मित्र अमे व्याकुण छीअे. वणी निमित्तियाअे पहेलां भाख्यु हतुं के श्रीकान्ता ने ज्यारे साँप दंश मारसे ते वखते अेने जीवाड़नारो सेनो पति बनशे।

हिन्दी अनुवाद :–

श्रीकान्ता हमारी बहन को सांप ने डंस लिया है और कोई उसे बचा नहीं पा रहा इसलिए हे मित्र हम लोग परेशान हैं। ज्योतिषीद्र ने पहले बताया था कि श्रीकान्ता को जब साँप डंसेगा उस वक्त इसे जीवित करने वाला इसका पति बनेगा।

गाहा :–

एयं च तस्स वयणं अलिय-प्पायं तु संपइ जायं ।
जं सा अहिणा डक्का न य कोवि हु तं समुट्ठवइ ।।१८६।।

संस्कृत छाया :–

एतच्च तस्य वचनमलीकप्रायं तु सम्प्रति जातम् ।
यत् साहिना दष्टा न च कोऽपि खलु तां समुत्थापयति ।।१८६।।

गुजराती अनुवाद :–

अहीं अनुं वचन जूठुं पड्युं केमके सापे दशी लीधी छे पण कोई बचावी शक्युं नथी।

हिन्दी अनुवाद :–

लगता है उसका वचन झूठा है क्योंकि साँप ने डंस लिया है किन्तु कोई उसे बचाने में सफल नहीं हो रहा है।

गाहा :–

धणदेव! तओ अम्हं संपइ तुट्टा ओ जीवियव्वासा ।
अइवल्लह-भगिणीए तेणम्ह सोगाउला धणियं ।।१८७।।

संस्कृत छाया :–

धनदेव! ततोऽस्माकं सम्प्रति त्रुटिता ओ! जीवितव्याशा ।
अतिवल्लभभगिन्यास्तेन वयं शोकाकुलाऽतिशयेन (बाढम्) ।।१८७।।

गुजराती अनुवाद :–

हे धनदेव! मारी अत्यन्त प्रिय बहेन ने जीववानी आशा नथी रही तेथी अमे बहुदुःखी छीए।

हिन्दी अनुवाद :–

हे धनदेव! मेरी अत्यन्त प्रिय बहन के जीने की आशा नहीं रही। इसलिए हम बहुत दुःखी हैं।

गाहा :–

इय सोउं धणदेवो सहरिस-चित्तो समुल्लवइ एवं ।
मा कुण सोयं सुंदर! न होइ अलियं तयं वयणं ।।१८८।।

संस्कृत छाया :–

इति श्रुत्वा धनदेवः सहर्षचित्तः समुल्लपत्येवम् ।
मा कुरु शोकं सुन्दर! न भवत्यलीकं तद् वचनम् ।।१८८।।

गुजराती अनुवाद :–

आ सांभळी ने धनदेवे हर्षपूर्वक कह्युं हे सुंदर! तुं शोक न कर केमके ते वचन जूठुं न पड़े।

हिन्दी अनुवाद :–

यह सुनकर धनदेव ने हर्षपूर्वक कहा, हे सुन्दर! तूं शोक न कर क्योंकि वह वचन झूठा नहीं होगा।

गाहा :–

दे! पिच्छामो ताव य तुह भगिणिं, तेण एवमुल्लविए ।
नीओ तीए समीवे धणदेवो भणइ निय-पुरिसं ।।१८९।।

संस्कृत छाया :–

दे! (हे) पश्यामस्तावच्च तव भगिनीं तेनैवमुल्लपिते।

नीतस्तस्याः समीपे धनदेवो भणति निजपुरुषम्।।१८९।।

गुजराती अनुवाद :–

पहेला मने तारी बहेन ने जोवा छे, आवु धनदेवे कहयुं, त्यारे श्रीदत्त धनदेव ने पोतानी बहेन पासे लई गयो, अे पछी त्यारे धनदेवे पोताना माणशने कह्युं.

हिन्दी अनुवाद :–

धनदेव ने कहा कि पहले मुझे तुम्हारी बहन को देखना है। तब श्रीदत्त धनदेव को अपनी बहन के पास ले गया और तब धनदेव ने अपने आदमियों से कहा।

गाहा :–

तं सुप्पइट्ठ-दिन्नं आणेसु मणिंति ताहे सो पुरिसो।

घित्तुं लहु दिव्व-मणिं समागओ तस्स पासम्मि।।१९०।।

संस्कृत छाया :–

तं सुप्रतिष्ठ-दत्तमानय मणि-मिति तदा स पुरुषः।

गृहीत्वा लघु दिव्यमणिं समागतस्तस्य पार्श्वे।।१९०।।

गुजराती अनुवाद :–

सुप्रतिष्ठ ए आपेल ते मणी लई आवो. त्यारे ते माणस ते मणी लई आव्यो।

हिन्दी अनुवाद :–

सुप्रतिष्ठ की वह दी हुई मणि ले आओ। तब वह आदमी वह मणि ले आया।

गाहा :–

विमल-सलिलेण सित्तो दिव्व-मणी ताहे तेण नीरेण।

अब्भोक्खिया सलील समुट्ठिआ सुह-पसुत्तव्व।।१९१।।

संस्कृत छाया :–

विमलसलिलेन सिक्तो दिव्यमणिस्तदा तेन नीरेण।

अभ्युक्षिता सलिलं समुत्थिता सुख-प्रसुप्तेव।।१९१।।

गुजराती अनुवाद :–

मणी द्वारा सिंचायेला निर्मण जलने श्रीकान्ता ऊपर छांट्युं त्यारे तेणी सुखपूर्वक सूई ने उठी होय तेम उभी थई।

हिन्दी अनुवाद :–

मणि द्वारा सिंचित निर्मल जल को जब धनदेव ने श्रीकान्ता के ऊपर छिड़का तब वह जैसे सुखपूर्वक सो कर उठी हो, वैसे खड़ी हो गयी।

गाहा :–

अविय।

तीए तं देह-गयं सप्प-विसं मणि-जलेण संसित्तं।
सुक्क ज्झाणाभिहयं नट्ठं कम्मंव मोहणियं।।१९२।।

संस्कृत छाया :–

अपि च.

तस्यास्तं देहगतं सर्प-विषं मणिजलेन संसिक्तम्।
शुक्लध्यानाभिहतं नष्टं कर्मेव मोहनीयम्।।१९२।।

गुजराती अनुवाद :–

अने तेणीनां शरीर मां रहेलुं झेर मणीनां पाणी छांटवा थी शुक्लध्यान थी मोहनीय कर्म नष्ट थाय तेम नष्ट थयुं।

हिन्दी अनुवाद :–

और उसके शरीर में रहा हुआ जहर मणि के पानी के छिड़कने से ऐसे नष्ट हो गया जैसे शुक्लध्यान आ जाने पर मोहनीय कर्म नष्ट हो जाता है।

गाहा :–

तं दट्ठुं सिरिदत्तो सागर-सिट्ठी य हरिसिया दोवि।
पिसुणंति तुज्झ एसा दिन्ना धणदेव! सिरिकंता।।१९३।।

संस्कृत छाया :–

तां दृष्ट्वा श्रीदत्तः सागरश्रेष्ठी च हर्षितौ द्वावपि।
पिशुनयति तुभ्यमेषा दत्ता धनदेव! श्रीकान्ता।।१९३।।

गुजराती अनुवाद :–

ते जोईने श्रीदत्त अने सागर शेठ बंने खुश थया ने कहयुं के धनदेव कन्या श्रीकान्ता तने आपी।

हिन्दी अनुवाद :–

यह देखकर श्रीदत्त और सागर शेठ दोनों बहुत खुश हुए और 'बोले कि धनदेव! कन्या श्रीकान्ता को हमने तुम्हें दिया।

गाहा :–

तत्तो सोहण-लग्गे परिणीया उच्छवेण महया उ ।
तीए सो अणुरत्तो विसय-सुहं भुजए तत्थ ।।१९४।।

संस्कृत छाया :–

ततः शोभनलग्ने परिणीतोत्सवेन महता तु ।
तस्यां सोऽनुरक्तो विषयसुखं भुनक्ति तत्र ।।१९४।।

गुजराती अनुवाद :–

त्यार पछी शुभ लग्न मां मोटा उत्सव पूर्व परणेलो धनदेव श्रीकान्ता मां रागवाळो थयेलो त्यां तेनी साथे विषयोने सुखपूर्वक भोगवे छे.

हिन्दी अनुवाद :–

उसके बाद शुभ लग्न में एक बड़े समारोह में श्रीकान्ता के साथ परिणीत धनदेव उसके प्रति रागयुक्त हो विषयों को सुखपूर्वक भोगता है।

गाहा :–

जा तत्थ कइवि मासे चिट्ठइ सो तीए जोव्वणासत्तो ।
ताव य सव्वं भंडं विक्कीयं तस्स पुरिसेहिं ।।१९५।।

संस्कृत छाया :–

यावत् तत्र कत्यपि मासान् तिष्ठति स तस्या यौवनासक्तः ।
तावच्च सर्वं भाण्डं विक्रीतं तस्य पुरुषैः ।।१९५।।

गुजराती अनुवाद :–

आम तेणीनां यौवन मां आशक्त धनदेवना केटलाय महीना पसार थई गया अने ओना पुरुषो वड़े बधो माल पण वेचाई गयो।

हिन्दी अनुवाद :–

उसके यौवन में आसक्त धनदेव को कई महीने बीत गये और उसके आदमियों द्वारा उनका पूरा माल भी बिक गया।

गाहा :–

पडिभंडं पिहु गहियं संवूढा सयल-सत्थिया ताहे ।
धणदेवो आपुच्छइ गमणत्थं ससुर-वग्गं तं ।।१९६।।

संस्कृत छाया :–

प्रतिभाण्डं पृथु गृहीतं संव्यूढाः सकल-सार्थिकास्तदा ।
धनदेव आपृच्छति गमनार्थं श्वसुरवर्गं तम् ।।१९६।।

गुजराती अनुवाद :–

बधा सार्थना लोको पण जवा माटे सज्ज थई गया त्यारे धनदेव जवा माटे सासरा ने पूछवा गयो।

हिन्दी अनुवाद :–

उसके सार्थ के सभी लोग जाने के लिए तैयार हो गये तब धनदेव जाने के लिए अपने ससुर से आज्ञा लेने गया।

गाहा :–

अह भूरि-दविण-जुत्ता दासी-दासाइ-परियण-समग्गा ।
सिरिकंता निय-पिउणा पट्ठविया भत्तुणा समयं ।।१९७।।

संस्कृत छाया :–

अथ भूरि-द्रव्ययुक्ता दासी-दासादि-परिजन-समग्रा ।
श्रीकान्ता निज-पिता प्रस्थापिता भर्त्रा समम् ।।१९७।।

गुजराती अनुवाद :–

खूब द्रव्य दास-दासी अने स्वजनो सहित श्रीकान्ता पोताना पिता द्वारा पति साथे मोकलावाइ।

हिन्दी अनुवाद :–

प्रचुर द्रव्य, दास, दासी और स्वजनों सहित श्रीकान्ता अपने पिता द्वारा पति के साथ भिजवाई।

गाहा :–

पुव्वुद्दिट्ठ-कमेणं धणदेवो गरुय-सत्थ-परियरिओ ।
चलिओ निय-नयरम्मि कुसग्गनयराउ सुह-दिवसे ।।१९८।।

संस्कृत छाया :–

पूर्वोदिष्ट-क्रमेण धनदेवो गुरुकसार्थ-परिवरितः ।
चलितो निजनगरे कुशाग्रनगरात् शुभ-दिवसे ।।१९८।।

गुजराती अनुवाद :–

पूर्व मां कहेला क्रम थी मोटा सार्थनी साथे धनदेव सारा दिवसे कुशाग्र नगर थी पोताने गाम जवा नीकल्यो.

हिन्दी अनुवाद :–

पूर्व में कहे गए क्रम से विशाल सार्थ के साथ धनदेव शुभदिन में कुशाग्रनगर से अपने गाँव के लिए निकला।

गाहा :–

अह कमसो संपत्तो सीह-गुहासन्न-भू-पएसम्मि ।
आवासियम्मि सत्थे धणदेवो चिंतए एवं ।।१९९।।

संस्कृत छाया :–

अथ क्रमशः सम्प्राप्तः सिंहगुहासन्न-भूप्रदेशे ।
आवासिते सार्थे धनदेवश्चिन्तयत्येवम् ।।१९९।।

गुजराती अनुवाद :–

क्रम थी सिंह गुफानी नजीकनां प्रदेश मां सार्थ ज्यारे रोकायो त्यारे धनदेवे विचार्युं के..

हिन्दी अनुवाद :–

क्रम से सिंह गुफा के नजदीक प्रदेश में जब सार्थ रूका तब धनदेव ने विचार किया कि...

गाहा :–

तइया पल्ली-वइणा भणिओ उ अहं अवस्समेतेण ।
आगंतव्वं तुमए मह धिइ-हेउंति ता इण्हिं ।।२००।।

संस्कृत छाया :–

तदा पल्लीपतिना भणितस्तु अहमवश्यमायता ।
आगन्तव्यं त्वया मम धृतिहेतुमिति तस्मादिदानीम् ।।२००।।

गुजराती अनुवाद :–

ते वखते पलीपतिअे मने कहयुं हतुं ने में जवाब आप्यो हतो के वळती वखते हुं आवीश तो हवे मारे तेना संतोष खातर जवुं जोइए।

हिन्दी अनुवाद :–

उस समय पल्लीपति ने मुझसे कहा था और मैंने जवाब भी दिया था कि लौटते समय मैं आऊँगा। तो मुझे उनके संतोष के लिए वहाँ जाना चाहिए।

गाहा :–

आसन्ना सा वट्टइ पल्ली ता सिग्धमेव गच्छामि ।
दट्ठूण सुप्पइट्ठं पुणरवि इहमागमिस्सामि ।।२०१।।

संस्कृत छाया :–

आसन्ना सा वर्तते पल्ली तस्मात् शीघ्रमेव गच्छामि ।
दृष्ट्वा सुप्रतिष्ठं पुनरपि इहाऽऽगमिष्यामि ।।२०१।।

गुजराती अनुवाद :–

वळी ते पल्ली अहीं नजीक मां ज छे तेथी हुं हमणा ज जऊं अने सुप्रतिष्ठ ने मळी ने पाछो आवी जईश।

हिन्दी अनुवाद :–

वह पल्ली यहाँ से नजदीक में है। मैं अभी वहाँ जाता हूँ और सुप्रतिष्ठ को मिलकर वापस आ जाऊँगा।

गाहा :–

इय चिंतिऊण कइवय-पुरिस जुओ वेसरीए आरूढो ।
संपत्तो अह पेच्छइ सीह-गुहं सव्वओ दड्ढं ।।२०२।। अविय।

संस्कृत छाया :–

इति चिन्तयित्वा कतिपय-पुरुषयुक्तो वेसर्यामारूढ़ः ।
सम्प्राप्तोऽथ प्रेक्षते सिंहगुहां सर्वतः दग्धाम् ।।२०२।।

गुजराती अनुवाद :–

आम विचारीने थोडा पुरुषोनी साथे हु वेसरी ऊपर बेसी ने सिंह गुफा पासे आव्यो त्यारे सिंह गुफा ने चारे बाजुथी बळेली जोई।

हिन्दी अनुवाद :–

ऐसा विचार कर थोड़े लोगों के साथ वेसरी पर बैठ कर सिंह गुफा के पास धनदेव पहुँचे तब उन्होंने देखा कि सिंह गुफा चारो ओर से जली हुई है।

गाहा :–

अविय।

जालालुंखिय-निवडिय-गो-महिस-करंक-कलिय-पेरंतं ।

पेरंत-सत्थ-विणिहय-हय-रुहिर-पवाह-दुग्गंधं ।।२०३।।

संस्कृत छाया :–

अपि च।

ज्वालादग्ध-निपतित-गौ-महिष-करङ्क-कलितपर्यन्तम् ।

पर्यन्त-शस्त्र-विनिहत-हय-रुधिर-प्रवाह दुर्गन्धम् ।।२०३।।

गुजराती अनुवाद :–

वळी ज्वाळा थी बळेला पड़ता गाय, भैंसना हाड़पिंजरो तथा शस्त्र थी हणायेला घोडा अने तेना लोहीना प्रवाह थी दुर्गन्धिवाळा...

हिन्दी अनुवाद :–

अग्नि की ज्वाला से जलकर गिरे हुए गाय, भैंसों के हाड़ पिंजर तथा शस्त्रों से मारे गए घोड़े और उनेके रक्त प्रवाह से उठती दुर्गन्ध वाली...

गाहा :–

दुग्गंध-धरणि-निवडिय-भड-मंस-वसा पसत्त-बहु-सुणहं ।

सुणह-भय-मुक्क-माणुस-करंक-सिव-मुक्क-

फेक्कारं ।।२०४।।

संस्कृत छाया :–

दुर्गन्धधरणिनिपतितभट-मांसवशाप्रसक्तबहुशुनकाम् ।

शुनक-भयमुक्तमानुषकरङ्कशिवमुक्तफेत्कारम् ।।२०४।।

गुजराती अनुवाद :–

दुर्गन्धिवाळी जमीन ऊपर पड़ेला सुभटो ना मांस, चरबी मां आशक्त अेवा घणा कूतराओ तथा अे कूतरा ना भय थी छोड़ी दीधा छे मनुष्योना हाड़ पिंजरो जेणे अवा शियाळियाओ ना लवारा वाळु.

हिन्दी अनुवाद :–

दुर्गन्धवाली जमीन पर पड़े हुए वीरों के मांस, वसा में आसक्त ऐसे बहुत से कुत्तों तथा इन कुत्तों के भय से जिन मनुष्यों के हाड़ पिंजर को छोड़ दिया है, ऐसे सियारों के फेत्कार वाले...

गाहा :-

फेक्कार-सवण संतट्ठ-भीरु-उड्डीण-गिद्ध-सिसु-निवहं ।

सिसु-निवह-हत्थ-संदट्ठ-भिल्ल-जुवईहिं दुप्पिच्छं ।।२०५।।

संस्कृत छाया :-

फेत्कार-श्रवणसन्त्रस्तभीरूड्डीनगृद्धशिशुनिवहम् ।

शिशुनिवहहस्तसन्दग्धभिल्लयुवतिभिर्दुष्प्रेक्ष्यम् ।।२०५।।

गुजराती अनुवाद :-

ओ लवाराना सांभणवाथी त्रास पामेला अने डरी ने उड़ता गीधना बच्चाओ ना समुदाय थी व्याप्त अने वळी बाळकोनां समूदाय छे जेना हाथ मां ओवा वळी गयेली भील युवतिओ वड़े न जोई शकाय ओवुं...

हिन्दी अनुवाद :-

सियारों का वह फेत्कार सुनकर दु:खी और डरे गिद्ध के बच्चों के झुंड से व्याप्त, बालकों का समूह जिनके हाथ में है, ऐसी बन गई भील युवतियाँ भी जिसे न. देख सकें वैसे...

गाहा :-

दुप्पिच्छ-जलण-जाला-पलुट्ठ-भिल्लोह-भवण-बीभच्छं ।

बीभच्छ-जलण-कवलिय-मय-माणुस-सय

समाइन्नं ।।२०६।।

संस्कृत छाया :-

दुष्प्रेक्ष्यज्वलनज्वालाप्लुष्टभिल्लौघभवनवीभत्सम् ।

वीभत्सज्वलनकवलितमृतमनुष्यशतसमाकीर्णम् ।।२०६।।

गुजराती अनुवाद :-

सळगती ज्वालाओं द्वारा भस्मीभूत भीलोना समुदायना भवनो थी भयंकर अने वळी भयंकर ज्वालाओं वड़े भरखातो सैंकड़ो मरेला मनुष्यों थी व्याप्त.

हिन्दी अनुवाद :-

मुश्किल से देखा जा सके ऐसी सुलगती हुई ज्वाला से भस्मीभूत भीलों के समुदाय के घरों से निकलती वीभत्स ज्वालाओं से भरे हुए सैकड़ों मनुष्यों से व्याप्त..

गाहा :–

तं दट्ठुं धणदेवो एवं वज्जरइ हा! किमेयंति ।

अइविसमावि हु पल्ली केण इमा हंदि! दड्ढत्ति ।।२०७।।

संस्कृत छाया :–

तां दृष्ट्वा धनदेव एवं कथयति हा किमेतदिति? ।

अतिविषमाऽपि खलु पल्ली केनेयं हन्दि दग्धेति ।।२०७।।

गुजराती अनुवाद :–

ते जोईने धनदेव बोल्यो अररर... आ बधु शुं थयुं? आटली दुर्गम्य ओवी आ पल्ली ने कोणे सळगावी।

हिन्दी अनुवाद :–

यह देखकर धनदेव ने कहा, अरे यह सब क्या हो गया। इतनी विषम ऐसी इस पल्ली को किसने जलाकर बर्बाद किया?

गाहा :–

एत्थंतरम्मि केणवि करंक-मज्झ-ट्ठिएण वज्जरियं ।

धणदेव! एहि एत्तो अहयं सो देवसम्मोत्ति ।।२०८।।

संस्कृत छाया :–

अत्रान्तरे केनाऽपि करङ्क-मध्यस्थितेन कथितम् ।

धनदेव! एहीतोऽहकं स देवशर्मेति ।।२०८।।

गुजराती अनुवाद :–

ओटली वार मां काटमाळनां मध्यमां रहेला कोइए कह्युं, हे धनदेव तुं आ बाजु आव हुं देवशर्मा छुं।

हिन्दी अनुवाद :–

इतने में अस्थिपंजर के बीच में रहा हुआ किसी ने कहा, हे धनदेव! तुम इस तरफ आवो मैं देवशर्मा हूँ।

गाहा :–

पलिच्छिन्न-चलण-जुयलो गुरु-पहरण-घाय-जज्जरिय-देहो ।

गाढं तिसाभिभूओ अज्जवि चिट्ठामि जीवंतो ।।२०९।।

संस्कृत छाया :–

परिच्छिन्न-चरण-युगलो गुरु-प्रहरणघात-जर्जरितदेहः ।
गाढं तृषाऽभिभूतोऽद्याऽपि तिष्ठामि जीवन् ।।२०९।।

गुजराती अनुवाद :–

कपायेला चरणवाळो अने घणा शस्त्रोंना घात थी हणायेलो जर्जरित देहवाळो अत्यंत तरस्यो हुं हजी जीवुं छुं।

हिन्दी अनुवाद :–

कटे पैर तथा अनेक शस्त्रों से हत जख्मी शरीर वाला तरसता मैं अभी जीवित हूँ।

गाहा :–

तं सोउं धणदेवो पुरिसं पट्ठविय पाणिय-निमित्तं ।
अइगुरु-विसाय-जुत्तो पत्तो अह तस्स पासम्मि ।।२१०।।

संस्कृत छाया :–

तं श्रुत्वा धनदेवः पुरुषं प्रस्थाप्य पानीयनिमित्तम् ।
अतिगुरुविषादयुक्तः प्राप्तोऽथ तस्य पार्श्वे ।।२१०।।

गुजराती अनुवाद :–

स सांभळीने धनदेवे पाणीमाटे एक माणसने मोकल्यो अने पोते खूब उदास चहेरे देवशर्मा नी पासे आव्यो।

हिन्दी अनुवाद :–

यह सुनकर धनदेव ने पानी लाने के लिए एक आदमी को भेजा और स्वयं अत्यन्त उदास, देवशर्मा के पास आया।

गाहा :–

भणियं धणदेवेणं साहसु भो! केण विलसियं एयं ।
सो कत्थ सुप्पइट्ठो अह सो सणियं समुल्लवइ ।।२११।।

संस्कृत छाया :–

भणितं धनदेवेन कथय भो! केन विलसितमेतद् ।
स कुत्र सुप्रतिष्ठोऽथ स शनैः समुल्लपति ।।२११।।

गुजराती अनुवाद :–

पछी धनदेवे पूछ्युं कोणे आ चधुं कर्युं अने सुप्रतिष्ठ क्यां छे। त्यारे देवशर्मा स धीरे थी कह्युं।

हिन्दी अनुवाद :–

बाद में धनदेव ने पूछा, यह सब किसने किया और सुप्रतिष्ठ कहां है? तब देवशर्मा ने धीरे से कहा।

गाहा :–

एत्तो तइयम्मि दिणे सिद्धपुराओ समागओ पुरिसो।
एगंतम्मि य सिट्ठं तेण इमं पल्लि-नाहस्स ।।२१२।।

संस्कृत छाया :–

इतस्तृतीये दिने सिद्धपुरात् समागतः पुरुषः।
एकान्ते च शिष्टं तेनेदं पल्लिनाथस्य ।।२१२।।

गुजराती अनुवाद :–

आज थी त्रीजे दिवसे सिद्धपुर थी अेक पुरुष आव्यो हतो. एकान्त मां तेणे पाल्लीपतिने आ प्रमाणे कह्युं।

हिन्दी अनुवाद :–

आज से तीन दिन पहले सिद्धपुर से एक आदमी आया था। उसने एकान्त में पल्लीपति को बुलाकर इस प्रकार बोला।

गाहा :–

कुमर! अहं पट्ठविओ तुह-पिउ-वर-मंति-सुमइ-नामेण।
भणियं च तेण, एवं साहेज्जसु सुप्पइट्ठस्स ।।२१३।।

संस्कृत छाया :–

कुमार! अहं प्रस्थापितस्तव पितृवर-मन्त्री-सुमतिनाम्ना।
भणितं च तेन, एतद् कथयस्व सुप्रतिष्ठाय ।।२१३।।

गुजराती अनुवाद :–

हे कुमार, तारा पितानो मुख्यमंत्री सुमतिअे मने मोकल्यो छे अने तने आ प्रमाणे कहेवा कह्युं छे।

हिन्दी अनुवाद :–

हे कुमार! तुम्हारे पिता के मुख्यमन्त्री सुमति ने मुझे यहाँ भेजा है और तुमसे इस प्रकार कहने को कहा है।

गाहा :–

सुग्गीवस्सिह रन्नो अतिसुरय-पसंग-दोसओ जाओ ।
खय-वाही तेण इमो चेट्ठइ खण-जीवियव्वोत्ति ।।२१४।।

संस्कृत छाया :–

सुग्रीवस्येह राज्ञोऽतिसुरत-प्रसङ्ग-दोषतो-जातः ।
क्षय-व्याधिस्तेनाऽयं तिष्ठति क्षण-जीवितव्य इति ।।२१४।।

गुजराती अनुवाद :–

सुग्रीव राजा अत्यंत कामवासना थी क्षय रोगथी पीडायेला, अंतिम अवस्था भोगवी रहया छे.

हिन्दी अनुवाद :–

सुग्रीव राजा अति कामवासना युक्त होने से क्षय रोग से पीड़ित अपनी अन्तिम अवस्था भोग रहा है।

गाहा :–

एसोवि सुरह-कुमरो संतावइ सयल-पयइ-वग्गं तु ।
दुस्सीलो उल्लंठो असब्भ-भासी अकज्ज-रओ ।।२१५।।

संस्कृत छाया :–

एषोऽपि सुरथकुमारः सन्तापयति सकल–प्रकृति-वर्गं तु ।
दुःशील उल्लण्ठोऽसभ्यभाष्यकार्यरतः ।।२१५।।

गुजराती अनुवाद :–

अने सुरथ कुमार बधी प्रजा ने संतापे छे वळी ते दुःशील, उल्लंठ, असभ्यवाणी अने अकार्य करनारो छे.

हिन्दी अनुवाद :–

और सुरथ कुमार सम्पूर्ण प्रजा को कष्ट देता है। वह अत्यन्त चरित्रहीन, उद्दंड, असभ्य वचन वाला और न करने वाला कार्य करने वाला है।

गाहा :–

तह एयस्स विरत्ता सामंत-महंतमाइया सव्वे ।
रज्ज-सिरीए अजोगो, तं चेव य कुमर! जोगो सि ।।२१६।।

संस्कृत छाया :–

तथा एतस्य विरक्ताः सामन्त-महन्तादिकाः सर्वे ।
राज्यश्रिया अयोग्यः, त्वमेव च कुमार योग्योऽसि ।।२१६।।

गुजराती अनुवाद :–

तथा सामन्त महंत बधा अेनाथी कंटाळी गया छे. तेथी हे कुमार! तमे राज्यलक्ष्मी ने योग्य छो।

हिन्दी अनुवाद :–

तथा सामन्त, महंत सभी उससे परेशान हो गए हैं। इसलिए हे कुमार! तुम राज्य लक्ष्मी के योग्य हो।

गाहा :–

तुज्झ पुण वहट्ठाए कणगवईए, पभूय-विक्खेवो ।
पट्ठविओ ता तुमए रक्खेयव्वं निय-सरीरं ।।२१७।।

संस्कृत छाया :–

तव पुनर्वधार्थं कनकवत्या प्रभूत-विक्षेपः ।
प्रस्थापितस्तावत्त्वया रक्षितव्यं निज-शरीरम् ।।२१७।।

गुजराती अनुवाद :–

तमने मारवा माटे कनकवतीए मोटु सैन्य मोकल्युं छे तेथी तमारे तमारो जीव बचाववो।

हिन्दी अनुवाद :–

तुम्हें मारने के लिए कनकवती ने बड़ी सेना भेजीं है। इसलिए तुम अपनी जान बचाओ।

गाहा :–

एवं च जाव साहइ सो पुरिसो भद्द! पल्लि-नाहस्स ।
ताव य सो विक्खेवो पभूय-रह-तुरय-पाइक्को ।।२१८।।
सहसच्चिय संपत्तो समंतओ वेढिया इमा पल्ली ।
अह भिल्ल-निवह-सहिओ नीहरिओ सुप्पइट्ठोवि ।।२१९।।

संस्कृत छाया :–

एवञ्च यावत् कथयति स पुरुषो भद्र! पल्लिनाथाय ।
तावच्च स विक्षेपः प्रभूत-रथ-तुरङ्ग-पदातिः ।।२१८।।

सहसैव सम्प्राप्तः समन्ततो वेष्टितेयं पल्ली ।

अथ भिल्लनिवहसहितो निःसृतः सुप्रतिष्ठोऽपि ।।२१९।।

युग्मम्।।

गुजराती अनुवाद :–

आटलुं पेलो पुरुष पलीपतिने कहेछे अेटली वारमां तो पुष्कळ रथ घोड़ा अने पायदल साथेनुं लश्कर आवी पड़्युं अने अेटली वारमां तो आखी पल्लीने लोकोए घेरी लीधी त्यारे भीलना समुदाय साथे सुप्रतिष्ठ पण बहार आव्यो।

हिन्दी अनुवाद :–

इतना उस आदमी ने पल्लीपति से कहा तभी पुष्कल रथ, घोड़ा और पैदल के साथ सेना आ गयी, और इतने में उन्होंने समस्त पल्ली के लोगों को घेर लिया तभी भील समुदाय के साथ सुप्रतिष्ठ भी बाहर आये।

गाहा :–

बहु-जण-संहार-करं लग्गं आओहणं महा-घोरं ।

निहया बहवो भिल्ला विजिया अम्हे परबलेणं ।।२२०।।

संस्कृत छाया :–

बहुजन-संहारकरं लग्नमायोधनं महाघोरम् ।

निहता बहवो भिल्ला विजिता वयं परबलेन ।।२२०।।

गुजराती अनुवाद :–

घणा लोकोनो नाश करनारुं अेवुं घोर युद्ध थयुं, घणा भीलो मराया अने अमे शत्रु सैन्य वड़े हार्या.

हिन्दी अनुवाद :–

अनेक लोगों का नाश करने वाला युद्ध हुआ। अनेक भील मारे गये और हम शत्रु की सेना से हार गए।

गाहा :–

गहिऊण तओ सारं सव्वं डहिऊण सीहगुहमेयं ।

काउं हय-विप्पहयं विणिग्गयं पर-बलं तत्तो ।।२२१।।

संस्कृत छाया :–

गृहीत्वा ततः सारं सर्वं दग्ध्वा सिंहगुहामिमाम् ।

कृत्वा हत-विप्रहतं विनिर्गतं परबलं ततः ।।२२१।।

गुजराती अनुवाद :–

त्यार पछी सारी वस्तु लईने सिंह गुफाने चारे बाजुथी बाळी नाखी अने कत्लेआम करीने शत्रुनुं सैन्य जतुं रहयुं।

हिन्दी अनुवाद :–

इसके बाद सारा सामान लेकर सिंह गुफा को चारो तरफ से जला दिया और भयंकर कत्लेआम कर शत्रु के सैनिक चले गए।

गाहा :–

अहयंपि हु जुज्झंतो एयमवत्थंतरं इहं पत्तो।
धणदेव! नेव जाणे किं जायं सुप्पइट्ठस्स ।।२२२।।

संस्कृत छाया :–

अहमपि खलु युध्यमान एतदवस्थान्तरमिह प्राप्तः।
धनदेव! नैव जानामि किं जातं सुप्रतिष्ठस्य ।।२२२।।

गुजराती अनुवाद :–

हे धनदेव! हुं पण युद्ध करता आवी अवस्था ने प्राप्त थयो छुं अने सुप्रतिष्ठ ने शुं थयुं ते हुं जाणतो नथी।

हिन्दी अनुवाद :–

हे धनदेव! मैं भी युद्ध करता हुआ इस अवस्था को प्राप्त हो गया और सुप्रतिष्ठ का क्या हुआ? मैं नहीं जानता।

गाहा :–

पंच-नमोक्कारो अह दिन्नो सम्मत्त-वय-समेओ से।
तेणवि य भाव-सारं पुणरुत्तं भणिउमाढत्तो ।।२२३।।

संस्कृत छाया :–

पञ्चनमस्कारोऽथ दत्तः सम्यक्त्वव्रतसमेतस्तस्मै।
तेनाऽपि च भावसारं पुणरुक्तं भणितु-मारब्धः ।।२२३।।

गुजराती अनुवाद :–

धनदेवे सम्यक्त्व व्रत पूर्वक देवशर्मा ने नमस्कार महामंत्र आप्यो अने देवशर्मा पण भावपूर्वक स्वीकारीने बोल्यो।

हिन्दी अनुवाद :–

धनदेव ने सम्यक्त्व व्रत पूर्वक देवशर्मा को नमस्कार महामन्त्र दिया और देवशर्मा ने भी उसे भावपूर्वक स्वीकार करते हुए कहा।

गाहा :–

एत्थंतरम्मि पुरिसो सलिलं घित्तूण आगओ तत्थ ।
धणदेवो भणइ तओ पियसु जलं देवसम्म! इमं ।।२२४।।

संस्कृत छाया :–

अत्रान्तरे पुरुषः सलिलं गृहीत्वाऽऽगतस्तत्र ।
धनदेवो भणति ततः पिब जलं देवशर्मन्! इदम् ।।२२४।।

गुजराती अनुवाद :–

एटलीवार मां धनदेवनो माणस त्यां पाणी लईने आव्यो एटले धनदेवे कहयुं के हे देवशर्मा पाणी पी.

हिन्दी अनुवाद :–

इतनी देर में धनदेव का आदमी वहाँ पानी लेकर आ गया। तब धनदेव ने कहा हे देवशर्मा! पानी पीओ।

गाहा :–

अह सो जलं पिबंतो अइतण्हा-सुसिय-तालुयत्तणओ ।
गुरु-वेयणा-परिगओ सहसा पाणेहिं परिचत्तो ।।२२५।।

संस्कृत छाया :–

अथ स जलं पिबन्नतितृष्णाशुष्कतालुकत्वतः ।
गुरुवेदना-परिगतः सहसा प्राणैः परित्यक्तः ।।२२५।।

गुजराती अनुवाद :–

पाणी पीतां पीतां अति सूकाई गयेला अेवा ताळवा वाळो खूबज वेदनायुक्त देवशर्माअे प्राण त्याग कर्यो।

हिन्दी अनुवाद :–

पानी पीते-पीते अति सूख गए तालू वाले कष्ट से छटपटाते देवशर्मा ने प्राण त्याग किया।

गाहा :–

धणदेवोवि हु अइगुरु-सोगो डहिऊण तस्स तं देहं ।
सव्वंपि समर-भूमिं जोयावइ नियय-पुरिसेहिं ।।२२६।।

संस्कृत छाया :–

धनदेवोऽपि खल्वति-गुरुशोको दग्ध्वा तस्य तं देहम् ।
सर्वमपि समरभूमिं दर्शयति निजकपुरुषैः ।।२२६

गुजराती अनुवाद :–

खूबज दुःखी थयेलो धनदेव अेना देहनो अग्नि संस्कार करीने आखी युद्धभूमि पोताना माणसो जोड़े जोई।

हिन्दी अनुवाद :–

अत्यन्त दुःखी हुए धनदेव ने उनके (देवशर्मा) शरीर का अन्तिम संस्कार करने के बाद पूरी युद्ध भूमि को अपने आदमियों के साथ देखा।

गाहा :–

न य कत्थइ उवलद्धं करंकमेत्तंपि पल्लि-नाहस्स ।
तत्तो चिंतइ एसो हा! धी! विहिणो विलसियस्स ।।२२७।।

संस्कृत छाया :–

न च क्वचिदुपलब्धं करङ्कमात्रमपि पल्लिनाथस्य ।
ततश्चिन्तयत्येष हा! धिग्! विधे-र्विलसितस्य ।।२२७।।

गुजराती अनुवाद :–

क्यांय पण पल्लीपतीना सुप्रतिष्ठनुं हाड़ पिंजर जोवा न मळ्युं अेटले धनदेव चिंता करवा लाग्यो के धिक्कार छे आ विधिना विलासने।

हिन्दी अनुवाद :–

पल्ली में कहीं भी सुप्रतिष्ठ का हाड़ पंजर देखने को नहीं मिला इसलिए धनदेव को चिन्ता होने लगी कि विधि की इस व्यवस्था पर धिक्कार है।

गाहा :–

तारिस-गुण-जुत्तस्सवि सरल-सहावस्स सुप्पइट्ठस्स ।
निग्घिण-कणगवईए हा! हा! कह दारुणं विहियं? ।।२२८।।

संस्कृत छाया :–

तादृश-गुणयुक्तस्याऽपि सरलस्वभावस्य सुप्रतिष्ठस्य ।
निर्घृणकनकवत्या हा! हा! कथं दारुणं विहितम् ।।२२८।।

गुजराती अनुवाद :–

आवा श्रेष्ठ गुणवाळो, सरस स्वभाववाला अेवा सुप्रतिष्ठ नो क्रूर कनकवती ए केवो करुण अंजाम लावी दीधो।

हिन्दी अनुवाद :–

इतने श्रेष्ठ गुणवाले सरस स्वभाववाले सुप्रतिष्ठ को क्रूर कनकवती ने कैसे करुण अंजाम तक पहुँचा दिया।

गाहा :–

माइंदजाल-सरिसं सव्वं एयम्मि हंदि! संसारे ।
खण-दिट्ठ-नट्ठ-रूवं धण-परियण-जीवियव्वाइं ।।२२९।।

संस्कृत छाया :–

मायेन्द्र-जाल-सदृशं सर्वमेतस्मिन् हन्दि! संसारे ।
क्षणदृष्ट-नष्टरूपं धनपरिजन-जीवितव्यादिनि ।।२२९।।

गुजराती अनुवाद :–

खरेखर संसार मां बधुं माया अने इन्द्रजाल समान छे. क्षण वार मां धन, परिजन, जीवन हतुं न हतुं थई जाय छे।

हिन्दी अनुवाद :–

इस संसार में सब कुछ माया और इन्द्रजाल के समान है। क्षण भर में धन, परिजन, जीवन जो था, अब नहीं रहता है।

गाहा :–

न य नज्जइ किं जायं महाणुभावस्स सुप्पइट्ठस्स ।
किं जीवइ अहव मओ संगामे एत्थ जुज्झंतो? ।।२३०।।

संस्कृत छाया :–

न च ज्ञायते किं जातं महानुभावस्य सुप्रतिष्ठस्य ।
किं जीवति अथवा मृतः संग्रामेऽत्र युध्यमानः? ।।२३०।।

गुजराती अनुवाद :–

शी खबर महानुभाव सुप्रतिष्ठनुं शुं थयुं? संग्राम मां लड़तां ते जीवे छे के मर्यो.

हिन्दी अनुवाद :–

क्या खबर महानुभाव सुप्रतिष्ठ का क्या हुआ? संग्राम में लड़ते हुए वे जीवित हैं कि मर गए कुछ पता नहीं।

गाहा :–

एमाइ चिंतयंतो धणदेवो आगओ निजे सत्थे ।
अह कमसो संपत्तो सत्थ-जुओ हत्थिणपुरम्मि ।।२३१।।

संस्कृत छाया :–

एवमादि चिन्तयन् धनदेव आगतो निजे सार्थे ।
अथ क्रमशः सम्प्राप्तः सार्थयुतो हस्तिनापुरे ।।२३१।।

गुजराती अनुवाद :–

आ प्रमाणे विचारतां धनदेव पोताना सार्थमां आव्यो अने क्रमे करीने सार्थ साथे हस्तिनापुर पहोंच्यो।

हिन्दी अनुवाद :–

इस प्रकार विचार करता हुआ धनदेव अपने सार्थ में लौट आये और बाद में सार्थ के साथ हस्तिनापुर आ गए।

गाहा :–

तुट्ठा ओ जणणि जणया सव्वे आणंदिया वयंसा से ।
सोहण-दिवसे बहुया पवेसिया नियय-गेहम्मि ।।२३२।।

संस्कृत छाया :–

तुष्टौ ओ! जननी-जनकौ सर्वे आनन्दिता वयस्यास्तस्य ।
शोभनदिवसे वधू प्रवेशिता निजकगेहे ।।२३२।।

गुजराती अनुवाद :–

माता, पिता, मित्रो बधा खुश थया अने संतोष पाम्या. सारा दिवसे घरमां पुत्र वधूनो प्रवेश कराव्यो।

हिन्दी अनुवाद :–

माता, पिता, मित्र सभी धनदेव के आने से खुश हो गए और उन्हें संतोष मिला। शुभ दिन देखकर घर में बहू को प्रवेश कराया गया।

गाहा :–

अह पुव्व सिणेहेणं सिरिकंता सासुयाइणुन्नाया ।
निय-चेडि-जुया पत्ता कमलावइ-देवि-गेहम्मि ।।२३३।।

संस्कृत छाया :–

अथ पूर्वस्नेहेन श्रीकान्ता श्वश्रवाऽनुज्ञाता ।
निज-चेटियुक्ता प्राप्ता कमलावती-देवी-गेहे ।।२३३।।

गुजराती अनुवाद :–

आ बाजु पूर्वना स्नेह थी श्रीकान्ता पोताना सासुनी आज्ञा लईने पोतानी दासी साथे कमलावती राणीनां महेल मां गई।

हिन्दी अनुवाद :–

इधर पहले के प्रेम के कारण श्रीकान्ता अपने सास की आज्ञा लेकर कमलावती राणी के महल में अपनी दासी के साथ गई।

गाहा :–

दट्ठुं पुव्व वयंसि वियसिय-मुह-पंकया महा-देवी ।
अइगरुय-सिणेहेणं उट्ठिय आलिंगए एयं ।।२३४।।

संस्कृत छाया :–

दृष्ट्वा पूर्ववयस्यां विकसित-मुख-पङ्कजा महादेवी ।
अतिगुरुकस्नेहेनोत्थाय आलिङ्गत्येताम्।।२३४।।

गुजराती अनुवाद :–

पोतानी नानपणानी सखी जोईने कमलावती विकसित मुखरूपी कमळ वाळी महादेवी अत्यंत हर्षपूर्वक श्रीकान्ता ने भेंटी पड़ी।

हिन्दी अनुवाद :–

अपने बचपन की सखी को देखकर खिले कमल के फूल की तरह कमलावती महादेवी अत्यन्त हर्षपूर्वक श्रीकान्ता के गले लगी।

गाहा :–

भणइ य वयंसि! उक्कंठियाए दिट्ठा पभूय-कालाओ ।
अइसोहणं हि जायं जं सासुरयंपि तुहवि एत्थ ।।२३५।।.

संस्कृत छाया :–

भणति च वयस्ये! उत्कण्ठितया दृष्टा प्रभूतकालात्।
अतिशोभनं हि जातं यत् श्वसुरगृहमपि तवाप्यत्र ।।२३५।।

गुजराती अनुवाद :–

अने बोलवा लागी के सखी घणा समयनी उत्कंठा पछी तने जोई। बहु सारुं थयुं के तारुं सासरुं पण अहीं छे।

हिन्दी अनुवाद :–

और कहने लगी कि सखी बहुत समय से तुम्हें देखने की इच्छा के बाद देखी। यह बहुत अच्छा है कि तुम्हारी ससुराल भी यहीं है।

गाहा :–

जं तुमए दिट्ठाए दिट्ठं मन्नामि पिइ-हरं सव्वं।
इय भणिउं देवीए उचिय-पवित्ती कया तीए ।।२३६।।

संस्कृत छाया :–

यत् त्वयि दृष्टायां दृष्टं मन्ये पितृगृहं सर्वम्।
इति भणित्वा देव्योचित-प्रवृत्तिः कृता तस्याः ।।२३६।।

गुजराती अनुवाद :–

तने जोईने मने मारुं पियर अहीं होय अेम लागे छे, आम कहीने देवीए श्रीकान्ता माटे उचित व्यवस्था करी।

हिन्दी अनुवाद :–

तुम्हें देखकर मेरा भी पीहर यही हो ऐसा हमें लगता है। ऐसा कहकर देवी ने श्रीकान्ता के लिए उचित व्यवस्था की।

गाहा :–

उवविट्ठाओ दोन्निवि कुसल-पवित्ती य साहिया सव्वा।
खणमेगं संभासं काऊण भणइ सिरिकंता ।।२३७।।

संस्कृत छाया :–

उपविष्टयोः द्वयोरपि कुशल-प्रवृत्तिश्च कथिता सर्वाः।
क्षणमेकं सम्भाषं कृत्वा भणति श्रीकान्ता ।।२३७।।

गुजराती अनुवाद :–

बन्ने बेठा अने अेक बीजानी कुशळवार्ता पूछवा लाग्या. थोड़ी वातो करीने श्रीकान्तास कहयुं।

हिन्दी अनुवाद :–

दोनों बैठे और एक दूसरे का कुशल क्षेम पूछने लगे। थोड़ी बात कर श्रीकान्ता ने कहा।

गाहा :–

गच्छामि इण्हि गेहे तत्तो कमलावई इमं भणइ ।
पइदियहं अइ! तुमए आगंतव्वं मह समीवे ।।२३८।।

संस्कृत छाया :–

गच्छामीदानीं गेहे ततः कमलावतीदं भणति ।
प्रतिदिवसं अयि! त्वयाऽऽगन्तव्यं मम समीपे ।।२३८।।

गुजराती अनुवाद :–

हवे मारा घरे जाऊं छुं. त्यारे कमलावतीअे कहयुं हे सखी तारे दर रोज मारे त्यां आववानुं छे।

हिन्दी अनुवाद :–

अब मुझे मेरे घर जाना है। तब कमलावती ने कहा कि हे सखी! तुम्हें रोज मेरे यहाँ आना है।

गाहा :–

भणियं सिरिकंताए एवं काहामि एवं भणिऊणं ।
देवीए अणुन्नाया समागया नियय-गेहम्मि ।।२३९।।

संस्कृत छाया :–

भणितं श्रीकान्तया एवं करिष्याम्येवं भणित्वा ।
देव्याऽनुज्ञाताः समागता निजगेहे ।।२३९।।

गुजराती अनुवाद :–

त्यारे श्रीकान्तास कहयुं भले अेम करीश. अेम कही ने राणीनी अनुज्ञा लईने पोताना घरे आवी।

हिन्दी अनुवाद :–

तब श्रीकान्ता ने कहा ठीक है ऐसा ही करूँगी। ऐसा कहकर रानी की आज्ञा लेकर वह अपने घर आ गयी।

गाहा :–

एवं सिरिकंताए ससुर-कुले तत्थ अच्छमाणीए ।
कमलावई-देवीए समयं गुरु-पीइ-जुत्ताए ।।२४०।।
धणदेवेणं समयं विसय-सुहं सम्ममणुहवंतीए ।
बहुयाओ अइक्कंता वासाणं कोडि-कोडीओ ।।२४१।।

संस्कृत छाया :–

एवं श्रीकान्तायाः श्वसुरकुले तत्राऽऽ समानयाः ।
कमलावतीदेव्या समकं गुरुप्रीतियुक्तया ।।२४०।।
धनदेवेन समकं विषयसुखं सम्यगनुभवन्त्याः ।
बहवोऽतिक्रान्ता वर्षाणां कोटीकोटयः ।।२४१।। युग्मम्।।

गुजराती अनुवाद :–

आ प्रमाणे श्रीकान्ता ए पोताना सासरिया मां रहेता छतां कमलावती राणी साथे पण गाढ प्रीतिनी साथे साथे धनदेव नी साथे विषय सुख ने भोगवतां घणा कोड़ा कोडी वर्ष पसार कर्या।

हिन्दी अनुवाद :–

इस प्रकार श्रीकान्ता अपने ससुराल में रहते हुए कमलावती रानी के साथ भी प्रगाढ़ प्रेम करती तथा धनदेव के साथ विषय सुख भोगते कितने कोड़ा-कोड़ी वर्ष व्यतीत किए।

गाहा :–

अह अन्नया कयाइवि रिउण्हाया भत्तुणा समं सुत्ता.।
रयणी-चरिम-जामे सुमिणं पासित्तु पडिबुद्धा ।।२४२।।

संस्कृत छाया :–

अथान्यदा कदाचिदपि ऋतुस्नाता भर्त्रा समं सुप्ता ।
रजनी-चरम-यामे स्वप्नं दृष्ट्वा प्रतिबुद्धा ।।२४२।।

गुजराती अनुवाद :–

एक वखत ज्यारे ओ ऋतु स्नान वाली थई पति साथे सूतां रात्रिना पाछला छेल्ला प्रहरमां स्वप्न जोईने जागी।

हिन्दी अनुवाद :–

एक दिन अब वह ऋतु स्नान वाली पति के साथ सोई थी, रात के पिछले प्रहर स्वप्न देखकर जग गयी।

गाहा :–

अह भणइ मए पिययम! सुमिणे चंदो मुहेण पविसंतो ।
दिट्ठो, तं दट्ठूणं सहसा बुद्धा तओ अहयं ।।२४३।।

संस्कृत छाया :–

अथ भणति मया प्रियतम! स्वप्ने चन्द्रो मुखेन प्रविशन् ।
दृष्टः, तं दृष्ट्वा सहसा बुद्धा ततोऽहम् ।।२४३।।

गुजराती अनुवाद :–

पछी ओणे कहयुं हे प्रियतम! स्वप्न मां चंद्रने मुख मां प्रवेशतो जोईने हुं जागी।

हिन्दी अनुवाद :–

बाद में उसने कहा, 'हे प्रियतम! मैंने स्वप्न में चन्द्रमा को मुख में प्रवेश करते हुए देखा और जाग गयी।

गाहा :–

भणियं धणदेवेणं सुंदरि! पुत्तो भविस्सए तुज्झ ।
सयल-वणि-वग्ग-पवरो इय एवं सूयए सुमिणं ।।२४४।।

संस्कृत छाया :–

भणितं धनदेवेन सुन्दरि! पुत्रो भविष्यति तव ।
सकल-वणिग्-वर्ग-प्रवर इत्येवं सूचयति स्वप्नम् ।।२४४।।

गुजराती अनुवाद :–

त्यारे धनदेवे कहयुं हे सुंदरी! तने बधा व्यापारी वर्ग मां श्रेष्ठ एवो पुत्र थशे अेवुं आ स्वप्न सूचित करे छे।

हिन्दी अनुवाद :–

तब धनदेव ने कहा हे सुन्दरी! तुम्हें समस्त व्यापारी वर्ग में श्रेष्ठ पुत्र होगा, ऐसा यह स्वप्न सूचित करता है।

गाहा :–

भणियं सिरिकंताए एवं पिय! होउ वयणयं सच्चं ।
सासण-देवी-पभावा बद्धो एसो मए गंठी ।।२४५।।

संस्कृत छाया :–

भणितं श्रीकान्तया एवं प्रिय! भवतु वचनं सत्यम् ।
शासनदेवी-प्रभावात् बद्ध एष मया ग्रन्थिः ।।२४५।।

गुजराती अनुवाद :–

श्रीकान्ताओ कहयुं तमारी वात साची छे. शासनदेवी ना प्रभावथी हुं आ गाँठ बांधुं छुं.

हिन्दी अनुवाद :–

श्रीकान्ता ने कहा तुम्हारी बात सच्ची है। शासन देवी के प्रभाव से आज यह गाँठ बाँध रही हूँ।

गाहा :–

तीए च्चिय रयणीए तीए कुच्छिंसि गब्भ-संभूई ।
जाता कमेण जाव य वोलीणा दोन्नि मासा से ।।२४६।।

संस्कृत छाया :–

तस्यामेव रजन्यां तस्याः कुक्षौ गर्भ-सम्भूतिः ।
जाता क्रमेण यावच्चाऽतिक्रान्तौ मासौ तस्याः ।।२४६।।

गुजराती अनुवाद :–

तेज रात्रि मां तेणीने कुक्षिमां गर्भ रह्यो आम क्रमथी तेणीने बे महीना पसार थई गया।

हिन्दी अनुवाद :–

उसी रात उसकी कोख में गर्भ ठहरा। इस प्रकार दो महीने बीत गए।

गाहा :–

तइयम्मि पुणो मासे दोहलओ तीए अभय-दाणम्मि ।
जाओ धणदेवेणवि सिट्ठे सो पूरिओ तीए ।।२४७।।

संस्कृत छाया :–

तृतीये पुनर्मासे दोहदकस्तस्या अभयदाने ।
जातो धनदेवेनाऽपि शिष्टे स पूर्णस्तस्याः ।।२४७।।

गुजराती अनुवाद :–

त्रीजा महीने तेणीने अभयदान आपवानो दोहलो थयो अने धनदेवे ते पूरो कर्यो।

हिन्दी अनुवाद :–

तीसरे महीने में उसे अभयदान देने वाला दोहद हुआ और धनदेव ने उसे पूरा किया।

गाहा :–

अह उवचिय-गब्भा पूरिए दोहलम्मी
पसवण-समयम्मी आगयम्मी सुहेण ।
सुह-गह-निवहम्मी उच्च-ठाण-ट्ठियम्मी
सुह-करण-मुहुत्ते दारयं सा पसूया ।।२४८।।

संस्कृत छाया :–

अथोपचित-गर्भा पूर्णे दोहदे, प्रसवन-समयेऽऽगते सुखेन ।
शुभग्रहनिवहे उच्चस्थान-स्थिते; शुभकरण-मुहूर्ते दारकं सा प्रसूता ।।२४८।।

गुजराती अनुवाद :–

आ बाजु मां वधता गर्भवाळी, पूर्ण दोहदवाळी तेणीनो प्रसवनो समय आवे छे. ने शुभग्रहनो समुदाय उच्च स्थान मां रहे छे। शुभकरण अने शुभ मुहूर्त मां तेणीओ पुत्रने जन्म आप्यो।

हिन्दी अनुवाद :–

इधर बढ़ते गर्भ और पूर्ण दोहदवाली उसके प्रसव का समय आता है। शुभ ग्रहों का समुदाय उच्चस्थान में हैं। शुभकरण मुहूर्त्त में उसने पुत्र जन्म दिया।

गाहा :–

साहु-धणेसर-विरइय-सुबोह-गाहा-समूह-रम्माए ।
रागग्गि-दोस-विसहर-पसमण-जल-मंत-भूयाए ।।२४९।।

एसोवि परिसमप्पइ सिरिकंता-तणय-पसवणो नाम ।
सुरसुंदरि-नामाए कहाए नवमो परिच्छेओ ।।२५०।।

संस्कृत छाया :–

साधु धनेश्वर-विरचित-सुबोध-गाथा-समूह-रम्यायाः ।
रागाग्नि (दोस) द्वेष-विषधर-प्रशमन-जलमन्त्रभूतायाः ।।२४९।।
एषोऽपि परिसमाप्यते श्रीकान्तातनय-प्रसवनो नाम ।
सुरसुन्दरी-नाम्न्याः कथायाः नवमः परिच्छेदः ।।२५०।।

गुजराती अनुवाद :–

साधु धनेश्वर द्वारा रचित सारा बोधयुक्त गाथाना समूह थी मनोहर रागरूपी अग्नि अने द्वेषरूप सांप ने शांत करवामां पाणी अने मंत्र समान एवो आ श्रीकान्ताने पुत्रना प्रसव नामनो सुरसुंदरीनाम नो कथानो नवमो परिच्छेद पूर्ण थयो।

हिन्दी अनुवाद :–

साधु धनेश्वर द्वारा रचित सुन्दर बोधयुक्त गाथाओं के समूह से मनोहर रागरूपी अग्नि और द्वेषरूपी सर्प को शान्त करने योग्य पानी और मन्त्र समान यह श्रीकान्ता के पुत्र का प्रसव नामक सुरसुन्दरी कथा का नौवां परिच्छेद पूर्ण हुआ।

*****

अहिंसा परमो धर्म

International School for Jain Studies

D-28, Panchsheel Enclave, New Delhi-110017, INDIA
Tel: 011-4079 3387 Email: issjs_india@yahoo.co.in
www.isjs.in

RESEARCH ASSISTANTS / ASSOCIATES NEEDED URGENTLY

International School for Jain Studies is engaged in promoting academic studies of Jainism and application of its doctrine for enhanced wellness globally. Since its inception, over 550 scholars from 25 universities of 30 countries and similar number of high scholars from 25 universities of 30 countries and similar number of high school teachers have attended our annual 4 to 6 week residential summer programs. ISJS is now hired by number of institutes to conduct research in various aspects of Jainism and application of its three main principles namely Ahimsa, Anekant (Multiplicity of view points) and Aparigraha (non possession). Please visit www.isjs.in for more information about ISJS.

ISJS has immediate need for one or two researcher assistants / associates to work on its research project. Ideally the candidate will be either a Ph.D. degree program in one of these departments Philosophy/Anthropology / Jainology & Comparative Studies. The candidates should be well versed in English and the use of computers for research and writing report.

Initially the appointment will be for a one year period likely to be extended for longer period. Salary / stipend offered will be commensurate with the prevailing structure. Opportunities may exist for travel both within and outside India.

Please apply with your CV and details of work done or under progress to issjs_india@yahoo.co.in within 20 days from the date of announcement.

Dr. Shugan C Jain
Chairman

भक्तामर यंत्र - ३ Bhaktamara Yantra - 3

ऋद्धि - ऊँ ह्रीं अर्हं णमो ओहिजिणाणं।

मंत्र - ऊँ ह्रीं थीं क्लीं ब्लूँ नमः।

प्रभाव - सारे रोग, शत्रु शान्त होते हैं तथा सिरदर्द दूर होता है।

Curing of diseases, especially headache and overcoming of enemies.